खुले आकाश के नीचे

खुले आकाश के नीचे

नमिता सिंह

धरती प्रकाशन

धरती प्रकाशन से प्रथम बार : 1987

प्रकाशक : धरती प्रकाशन, गंगाशहर, बीकानेर-334001 / मुद्रक : एस० एन० प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 / संस्करण : द्वितीय, 1987 / मूल्य : पच्चीस रुपये मात्र

KHULE AKASH KE NEECHE : Namita Singh
(Short Stories) Rs 25.00

प्यारी अम्मां
और
बाबू को

क्रम

एक निर्णय

मुझे नही मालूम कि इस खबर को तुम किस रूप में लोगे। लेकिन यह भी सच है कि मैं और आगे इस तनाव के साथ पुल-ऑन नहीं कर सकती। तुम्हारे साथ के पिछले डेढ़-दो साल स्लो पाइजनिंग मे बीते हैं···तो यू समझ लो कि मुकुल के साथ मेरी शादी एक बार में आत्महत्या है। तुम शायद एकबारगी चौंकोगे इस खबर से···हां, अगर अकेले मे बैठे हो तो, वर्ना अगर इस वक्त क्लब मे चिट्ठी रिसीव की है तो तुम इसे पढकर चेहरे पर चौड़ी-सी मुस्कान लाओगे और अगर तुम्हारे दोस्त पूछेंगे कि क्या बात है, तो तुम बहुत स्वाभाविक और साधारण रूप में बताओगे कि तुम्हारी एक मित्र ने, जो काफी जहीन थी, जिसके फ्यूचर प्रासपेक्ट्स बहुत अच्छे थे, एक ऐसे आदमी से शादी कर ली है, जो निहायत अहमक है। लेकिन वह आदमी, जो अहमक है, तुम्हारे नजरिये से उसमे कम-से-कम ईमानदारी है अपने प्रति। वह अहं के उस पर्वत के पीछे घिरे दुर्ग में नहीं रहता, जहां कभी भी कोई संवेदना का झौंका नही घुस पाता। तुमने मेरे अति संवेदनशील स्वभाव और भावुकता का कारण किसी प्रकार का प्रबल इनफीरियारिटी काम्प्लेक्स बताया था। मेरे काम्प्लेक्सेज, जिसका मैंने हमेशा सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विश्लेषण किया, उसके कारण व स्वरूप के हर पहलू को पहचाना था, वह मेरे चेतन मस्तिष्क मे था। अचेतन की गहराइयों में बैठा वह स्वभाव और व्यवहार की जटिलता और अस्वाभाविकता के साथ भूलभुलैया मे भटकता नही था बल्कि हमेशा ऊपर

रियलाइजेशन की सतह पर था, इसलिए वह मेरे लिए परेशानी की चीज नहीं थी। लेकिन तुम्हारा अहं, जिसे तुम आत्मविश्वास समझते थे, इतनी जबरदस्त हीन ग्रंथि का परिणाम था कि जिसे तुम कभी नहीं समझ पाये। यही वह चट्टान थी, जिसने हमेशा तुम्हारा स्वाभाविक बहाव रोका और तुमने इस चट्टान को ही अपने व्यक्तित्व की आधारशिला समझा। तुम्हें याद होगा, जब तुम्हारे संबंध मालती के साथ थे, उस समय मेरे और तुम्हारे बीच कितने फार्मल टर्म्स रहे। हालांकि मैं और मालती हमेशा एक साथ हॉस्टल मे रहे और मेरे सामने छह साल तुम मालती से सम्बद्ध रहे, लेकिन मैंने कभी तुम्हारे बारे में या तुम्हारे और मालती के संबंधों की गहराई के बारे में जानने की कोशिश नहीं की। पता नहीं क्यो मेरा हमेशा से ऐंटीमैन एटीट्यूड रहा है। मुझे हमेशा आदमी एक निहायत बेवकूफ जीव नजर आया है। कितना ही पढ़ा-लिखा, बुद्धिजीवी और मान-प्रतिष्ठा-प्राप्त आदमी क्यो न हो, लड़कियों की कंपनी मे हमेशा उसकी दशा यूं होती है, जैसी हड्डी का टुकड़ा दिखाने पर दुम हिलाते हुए, कान झुकाकर चलने वाले कुत्ते की होती है। कोई लड़की स्वाभाविक खुलेपन से बात भर कर ले, पहली ही बार मे यह जीव यूं लिपट जाने का भाव दिखाता है मानो दुनिया मे वही एक लड़की है, जिस पर वह पहले-पहल मर मिटा हो'''और यह भाव इतना घिनौना, वितृष्णा पैदा करने वाला होता है कि बस'''बात चाहे कितने ही बौद्धिक स्तर की क्यो न हो, बहस का विषय चाहे कामू हो या सार्त्र, सोशलिज्म हो या मार्क्सवाद, मॉडर्न आर्ट हो या चांद, नजर लड़की के शरीर पर दौड़ती रहेगी, मेजरमेंट्स का अंदाजा दिमाग मे होता रहेगा और संवेदना लड़की की उपस्थिति मात्र से उत्पन्न गर्माहट का जायजा लेती हुई।

खैर, संबंध तुम्हारे और मालती के थे और मैं तुम्हारे आने पर हमेशा कमरा छोड़कर चली जाती थी'''और हमेशा इस मामले से मे असंबद्ध रही।

थोड़ा-सा अटपटा महसूस किया उस दिन, जब मैं कमरे मे आना

चाहती थी अपना पेन लेने कि मैंने मालती को कहते सुना, जो बिखरकर तुम पर बरस रही थी—'क्या मैं तुम्हारी जागीर हूं जिसे तुमने खरीद लिया है? अला से मत बोलो, फला से मत बोलो! तुम क्या सोचते हो कि कमरे में बंद होकर तुम्हारी शक्ल देखने से मेरी रिसर्च पूरी हो जायेगी···?' और मैं उल्टे कदमों से वापस चली आयी। मैं तो इस इंतजार में थी कि कब मालती तुम्हारे साथ अपनी शादी की तारीख घोषित करती है और कहां यह उल्टा मामला! कुछ थोड़ी सहानुभूति मैंने महसूस की तुम्हारे लिए। पहली बार इस मामले पर मैंने मालती से बात की। उसने बहुत शांत और स्थिर स्वर में कहा—मिनी, वह शख्स शादी के काबिल नहीं है। बहुत वह उदार और प्रगतिवादी बनता है, लेकिन सच यह है कि उसका निबाह गांव की किसी दर्जा आठ पास लड़की के साथ हो सकता है, जो उसे भगवान मानकर पूजती रहे।

—लेकिन मालती, तुम इस बात से इनकार नहीं कर सकती कि वह तुम्हे दिलो-जान से चाहता है। तुम्हारे लिए उसने मां-बाप छोड़े, घर छोड़ा, क्या इसका भी कोई मूल्य नहीं?

—उसने मां-बाप छोड़े, घर छोड़ा, क्योंकि उसका यह पहला अनुभव था, जिसके बहाव में वह एक शानदार हीरो की तरह सब सह ले गया। फिर क्या मैं उसे नहीं चाहती? लेकिन महज चाहना ही सब कुछ नहीं। आपस में ऐडजस्टमेंट होना एक अलग मसला है। सच तो यह है मिनी कि वह शख्स केवल अपने आपको प्यार करता है। वह अपने में सुप्रीम है। अपने अस्तित्व, अपनी सत्ता के सामने वह किसी को भी नहीं स्वीकार कर सकता। वह मुझे अपनी राजसी सत्ता की शोभा बढ़ाने के लिए महज एक हीरा बनाकर अपने ताज में सजाना चाहता है···अपने साथ बिठाकर अपनी कमजोरियों को दूर करने के लिए मेरा हाथ पकड़ना या मेरा सहारा लेने का एहसास भर उसके लिए बुरी तरह अपमानजनक है।

मुझे लगा कि तुम नहीं, वरन् मालती ही कहीं पर बहुत व्यक्तिवादी हो रही है। उसकी खुदगर्जी पर मुझे बहुत गुस्सा आया,, पर ऐसा भी महसूस हुआ कि उसके इस व्यवहार के पीछे कोई अन्य कारण भी है। इसके एक महीने बाद मालती घर चली गयी और लगभग छह महीने बाद

पता चला कि उसकी शादी एक डॉक्टर से हो गयी है और वह अमेरिका चली गई है उसके साथ।

उस दिन तुम कॉफी-हाउस में मिले, सिगरेट पीते बाहर खिड़की से सड़क निहारते हुए। मुझे अपनी कज़िन का इंतजार करना था वहां। घुसते ही तुमको देखा। एक क्षण की हिचकिचाहट के बाद पैर स्वतः तुम्हारी मेज की ओर बढ़ गये। शायद मन में यह जानने की उत्कंठा थी कि मालती की शादी की बात तुम्हें मालूम है या नहीं। बातों-ही-बातों में मैंने मालती का जिक्र किया, तो तुमने उस विषय को बदल देना चाहा। मैंने फिर सूत्र पकड़ा और मालती की शादी की बात कही। तुम सचमुच हतप्रभ हो गये। फिर एकबारगी मुखौटा बदल, अपनी परिचित लापरवाही का प्रदर्शन करते हुए तुमने कंधे झटके और कहा—ओह, दैट्‌स वेरी गुड। अच्छा हुआ, उसने शादी कर ली! मिस शर्मा आपको मालूम है, मैं और मालती अच्छे दोस्त थे लेकिन लगता है, शादी की हड़बड़ी में वह मुझे इनवाइट करना भूल गयी। भई, आप मुझे उसका पता दीजियेगा। कम-से-कम बधाई तो भेज ही दूंगा। और तुम हंस पड़े ठहाका मारकर। मैंने मन-ही-मन तुम्हारे अभिनय की दाद दी। तुमने बनारसीबाग पार्क तक घूमने चलने का आग्रह किया। तुम्हारी मन स्थिति का अंदाजा कर मुझसे इनकार नहीं किया गया। हम बाग में पेड़ों के झुरमुट के पीछे थे। तुम कुछ खोये-खोये से लग रहे थे। अचानक मानो तुम सोते से जाग पड़े—मिस शर्मा, सुना था, आप कहानियां लिखती हैं। कभी सुनाइए न कुछ!

—हां, लिखती तो हूं, लेकिन आप जैसे आलोचकों के सामने धज्जियां नहीं उड़वानी हमें अपनी।

—अरे, कैसी बातें करती हैं! मैं हर वक्त आलोचक नहीं हूं साहित्य का'''और इस वक्त तो मैं सिर्फ एक दोस्त हूं आपका। सच पूछिए, तो मुझे उम्मीद नहीं थी कि आप मुझे अपनी कंपनी देंगी—और तुमने अपनी आंखें मेरे चेहरे पर गड़ा दीं। न जाने क्या ढूंढ रही थीं वे नजरें मेरे चेहरे पर। जाने कैसा भाव भरा था उन निगाहों में। मैंने बहुत अटपटा महसूस

किया और उन निगाहों को बरदाश्त न कर पाते हुए अपनी आंखें नीची कर लो।

—अरे बाप रे ! कितना बड़ा कीड़ा है आपकी साड़ी के ऊपर ! तुम झपट कर मेरी ओर आये। एक झटके में मेरी साड़ी का पल्ला नीचे गिरा दिया तुमने और जब तक मैं वस्तुस्थिति को समझू, तुमने मुझे अपनी बाहों में कसकर लपेट लिया और पागलों की तरह मुझे चूमने लगे।

यह सब एक पल में हो गया और जब मैंने अपने आपको तुम्हारे उस पागलपन के दौरे से, जो शायद इतना पशुवत था कि मेरा दम घोंट देता, मुक्त किया, उस समय मैं गुस्से में कांप रही थी। बमुश्किल मैं इतना कह पायी—मिस्टर राज, अपने होश की दवा कीजिए। आपने मेरी सहानुभूति का गलत मतलब लगाया···। और आगे के शब्द क्षोभ और अपमान की पीड़ा में दबकर रह गये। अपनी रुलाई रोकती मैं लगभग दौड़ती हुई चली आयी।

दूसरे दिन तुम्हारा पर्चा आया—मैं बेहद शरमिंदा हूं, मुझे माफ कर दीजिए ! मैंने कोई जवाब नहीं दिया और न तुमसे मिलने की ही कोशिश की। लेकिन बिलकुल ईमानदारी की बात यह थी कि मुझे तुम्हारी उस हरकत पर अब तनिक भी गुस्सा न था। भाव जो था मन में, वह असीम सहानुभूति और दया का था। सड़क पर चलता पागल अगर हमारे ऊपर ईंट उठाकर दौड़े तो हमें गुस्सा नहीं वरन् दया आती है···और तुम भी असीम दया के पात्र थे।

उसके बाद तुम एकबारगी पलटा खाकर ऊपर चढ़ने लगे। तुम्हारी बौद्धिक योग्यता और राजनीतिक क्षेत्र में मौलिक चिन्तन और विचार-धारा हमेशा प्रभावजनित रही। यह तुम्हारी ही विचारधारा का प्रभाव था कि मालती एक अच्छी सोशल वर्कर हो गयी थी और विशिष्ट राज-नीतिक चेतना का अनुभव करने लगी थी। इस प्रकार तुम अपनी यूनिवर्सिटी में तथाकथित प्रगतिवादी वर्ग के अगुवा थे। इसके अतिरिक्त अपने विभाग में तुम अब लड़कियों के वर्ग में विशेष प्रिय हो चले थे। तुम्हारी क्लास में लड़कियों की भीड़ रहती थी और तुम उनके बहुत अच्छे हीरो थे, कारण, वे सभी सुविधाएं, जो तुम उन्हें दे सकते थे उनकी पढ़ाई के संबंध में, खुले

दिल से देते थे। कैंटीन में तुम हमेशा उनसे घिरे नजर आते थे और डेटिंग तो चलती ही थी। इसके साथ ही एक और बड़ा परिवर्तन जो तुममे हुआ था, वह था हर वक्त लड़कियों को नीचा दिखाना और जाहिर है, इसके लिए तुम्हें अपनी छात्राओं से ज्यादा अच्छे शिकार नहीं मिल सकते थे, इसलिए वे ही बेचारियां बलि का बकरा बनती थीं। तुम, जो पहले कभी अपने स्टाफ में तथा छात्रवर्ग में बहुत सुसंस्कृत और लड़कियों के बीच सेफ टीचर के रूप में प्रतिष्ठित थे, अब अत्यधिक फ्लर्ट और परवर्टेड माने जाने लगे। उन्हें अपने साथ ले जाकर पहले चाय पिलाना और फिर दस अन्य स्टाफ के लोगों के सामने उन्हें अपने व्यंग-वाणों से जलील करना तुम्हारा एक प्रिय खेल था। और वे लड़कियां…उन्हें तो किताबें मिलती थीं, नंबर मिलते थे, स्कॉलरशिप भी दिलवा देते थे तुम और फिर तुम्हारी पोजीशन भी तो थी, वे बेवकूफ लड़कियां, पढ़ाई के साथ-साथ हसबैंड-हंटिंग के चक्कर में इस उम्मीद में रहती कि क्या पता, तुम हाथ लग ही जाओ।

तुमसे मेरी दूसरी मुलाकात पिक्चर-हॉल में हुई थी। बार-बार के टूटते कहकहे और फुसफुसाहटें…मैंने बाध्य होकर इंटरवल की रोशनी में पीछे घूमकर देखा। तुम एक सस्ती-सी लड़की के साथ बैठे थे। दोनों के बीच में एक ही कोकाकोला था। मुझे देख एकबारगी तुम हिचकिचाये, पर फौरन तुमने उपेक्षित भाव से मुझे अनदेखा कर दिया और पुनः उस लड़की की ओर मुखातिब हो गये।

सो यह थी तुम्हारी सफलता! हर एक आगे बढ़ते कदम के साथ तुम दो कदम नीचे गिर रहे थे। यह थी तुम्हारी बौद्धिकता और प्रगतिशीलता! यह थी तुम्हारी विलक्षण चेतना और सूझ-बूझ! भौतिक सफलता के साथ-साथ तुम हर क्षण बिखर रहे थे, टूट-टूट कर खंडित हो रहे थे। तुम अपने भीतर की शून्यता को जिस तेजी से भरना चाह रहे थे, वह और अधिक बढ़ती जा रही थी।

और वहीं बैठे-बैठे मैंने यह निश्चय किया कि तुम्हें बिखरने नहीं दूंगी। टूटने नहीं दूंगी। तुम्हें वह सब दूंगी, जो तुम चाहते थे और हमेशा

से चाहा था। तुम्हारी रिक्तता और शून्यता को भरूंगी। मुझे मालूम था कि तुम उन लोगों में से हो, जो बिना प्रेम किये जिंदा नही रह सकते। अपने आपको संपूर्ण प्यार और विश्वास के साथ किसी को दे देना तुम जैसे लोगों की सबसे सहज सुरक्षा होती है···और मैंने सोच लिया कि मैं तुम्हारे व्यक्तित्व के खंडित भागों को उठाकर सहेजूंगी। उसे संवारूंगी तुम्हारे आत्मविश्वास को मजबूत करूंगी, जो केवल भीड़ के सामने अभूतपूर्व था, लेकिन व्यक्तिगत और भावनात्मक स्तर पर बिल्कुल खोखला।

मैंने तुम्हें जबरदस्ती अपने निकट आने को मजबूर किया। तुमने शुरू में मुझे भी अपने वाक्‌चातुर्य से नीचा दिखाने की कोशिश की। तुमने यह सिद्ध करना चाहा कि मेरा सोचना, मेरी मान्यताएं, मेरे सामाजिक मूल्य बहुत संस्कारी, दकियानूसी और खोखले हैं। मैं चुपचाप, मन-ही-मन मुस्कराती, तुम्हें बिना किसी विरोध के सुनती रही। मैंने तुम्हें हरचंद यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि मैं तुम्हें केवल इसलिए नहीं सुनती कि मुझे तुमसे कोई स्वार्थ है या कामना है, वरन् मैं केवल तुम्हारी बौद्धिकता से, तुम्हारे मौलिक चिंतन से प्रभावित हूं। तुम मालती से अक्सर मेरे बारे में कहा करते थे कि मैं बहुत स्नॉब और इगोईस्ट हूं और मेरे स्वभाव की रिजर्वनेस के पीछे कड़ा दंभ और कभी न झुकने वाली मनोवृत्ति है··· तुमने अब यू पाया कि मैं बहुत भावुक भी हूं और जहां तक बौद्धिकता का प्रश्न है, मैं मस्तिष्क से तुम्हारे आगे आत्मसमर्पण करती हूं। जिस दिन तुमने यह महसूस किया, तभी से तुम एकबारगी मेरी ओर झुक गये। तुमने अपनी समस्त बाह्य प्रकृति के द्वारा, अपने स्वभाव या चेतनाशील विचार-धारा के द्वारा मुझे जीत लिया था और अब तुम्हें अपने भीतर के अति कमजोर और कराहते इंसान के लिए एक सहारा बहुत जरूरी चाहिए था वह सहारा, जो भावना का था, परस्पर विश्वास और सहानुभूति का था, संवेदना और निकटता का था।

तुमने जबरदस्त दोहरे व्यक्तित्व को ओढा हुआ था। बिना सहारे के, बिना मधुर प्रेम-संबंध के तुम आगे नहीं बढ़ सकते थे, लेकिन तुम्हारा अहं इतना मजबूत हो चुका था कि तुम्हें इस बात को कभी चेतन रूप में स्वीकारने नहीं देता था। तुम्हारे स्वभाव में इस कदर सतर्कता और

सावधानी का भाव भर गया था कि तुम मेरी हर बात को, हर क्रिया-कलाप को शक और संशय से देखते थे। तुम मेरे कंधे पर हाथ रखकर आगे बढ़ाना भी चाहते थे और साथ ही मुझे यह अहसास भी दिलाना चाहते थे कि कमजोर तुम नहीं, मैं हूं और तुम मेरे साथ चलकर मुझ कमजोर इनसान को सहारा दे रहे हो···और इसी में तुम्हारा अहं संतुष्ट होता था। तुम इस बात में भी सावधानी बरतना चाहते थे कि कहीं तुम्हारी अनुभूतियां, तुम्हारी भावनाएं मुझ पर प्रकट न हो जायें और फिर मैं उसका गलत फायदा उठाकर तुमको डामिनेट न करने लगूं और फिर हूब मालती जैसा हो। तुम हर तरह से अपना अपर हैंड रखना चाहते थे। मुझे मालूम है, तुम मुझे बहुत चाहते हो और चाहने लगे थे, लेकिन तुमने अपने चेतन मस्तिष्क में इस विचार को कभी महसूस नहीं किया। तुमने मेरे प्रति, मेरे क्रिया-कलापों के प्रति, मेरी उपलब्धियों और सफलताओं के प्रति हमेशा लापरवाही का भाव दिखाया।

मैंने यह महसूस किया, लेकिन मैं यह कभी नहीं भूली कि तुम सतुलित मानसिक अवस्था में नहीं हो। तुम्हारा अटपटा व्यवहार मेरे लिए चौकाने वाला नहीं था। तुमने एक दिन मुझसे कहा कि मालती से स्वयं तुमने संबंध विच्छेद कर लिये थे क्योंकि वह बहुत व्यक्तिवादी थी अपने स्वभाव व व्यवहार में तथा तुम्हारी विचारधाराओं से वह असहमत ही नहीं, वरन् उसकी तीव्र प्रतिरोधी थी। लेकिन मुझे मालूम है कि संबंध विच्छेद तुमने नहीं, मालती ने किये थे। तुम्हें यह भी गवारा नहीं था कि मालती तुम्हारे अतिरिक्त दूसरों की ओर जरा भी ध्यान दे। तुम्हारी प्रगतिवादी विचार-धारा और क्रियात्मकता में व्यक्तिगत स्तर पर बहुत अन्तर था। मालती बहुत खुले दिल की थी। उसे तुम्हारा झूठा दंभ बाद में असहनीय हो गया था। बाद के दिनों में तुम हमेशा मालती को यह अहसास दिलाने लगे कि वह जो कुछ है, तुम्हारी बदौलत। यह सच है कि तुम भीतर से कहीं पर मालती से बहुत ज्यादा अटैच्ड थे और उसका जाना तुम्हारे लिए एक जबरदस्त हार्ट-ब्रेक था, लेकिन फिर भी सवाल उस वक्त व्यक्तित्व के टकरावों का था। फिर कौन झुकता? टूटन स्वाभाविक थी।

और सत्य तो यह है कि किनारे पर खड़े होकर, तटस्थ भाव से मैंने

बीच सागर में तुम्हारी ओर रस्सी फेंकी थी, तुम्हें लहरों से बचा खींच लाने के लिए, लेकिन तुम्हारी गतिविधि, डूबना-उतरना तथा लहरों का उठना-गिरना देखते-देखते मैं इतनी निमग्न हो गयी कि मुझे पता ही नहीं चला कि कब मैं रस्सी के साथ सिमटने लगी और एक झटका खाकर मैं भी लहरों की थपेड़ में फंस गयी, तब मुझे वस्तुस्थिति का अहसास हुआ। यही वह क्षण था, जब मुझे यह महसूस हुआ कि तुम्हारे साथ मैं अब तटस्थ नहीं हूं। मैं शायद अब तुम्हें अपने से भी ज्यादा चाहती हूं। तुम्हारी कमजोरियां अब मेरे लिए श्रद्धा का विषय बन गयीं। मैं हर वक्त, हर क्षण, तुम्हारे सामीप्य की कामना करने लगी।

मैंने अपने संपूर्ण हृदय की गहराइयों के साथ तुम्हें चाहा था और यह अनुभव मेरे लिए सर्वथा नया था। मुझे मालूम नहीं था कि कहीं पर संपूर्ण का शून्य में सिमट जाना भी अपने में कितना विशाल और आह्लादकारी है। अपना समस्त, बिना किसी शर्त और झिझक के किसी को दे देना स्वयं को कितना कुछ दे देता है। सच देखो, इस दे देने से कितना कुछ मुझे मिला और साथ में तुम्हें भी। तुम्हारा पौरुष फिर गर्वोन्नत हो गया था एवं आत्म-विश्वास और दृढ़ तथा अक्षय्य। सारे जग को जीत लाने की क्षमता इस देने ने तुम्हें प्रदान की थी।

लेकिन इसके बाद भी तुम अपना पहला अनुभव भूले न थे। तुम्हें यह ध्यान था, कहीं मैं भी तुम पर हावी न होऊं। सच तो यह है कि तुम खुद अपने आपको अपने पास संजो कर नहीं रख सकते थे। निश्चय ही किसी अन्य की तुमने हमेशा आवश्यकता अनुभव की, जिसके हाथों में विश्वास-पूर्वक स्वयं को सौंपकर तुम निश्चिंत हो सको'''उन हाथों में, जहां मां की-सी सुरक्षा हो, मित्र का सहयोग और प्रिय का मधुर स्नेह हो। काश, तुम अपने पिछले संबंधों के अवशेषों को जलाकर खत्म कर चुके होते तो संशय और अविश्वास के दबे अंकुर बार-बार तुम्हारे मानस पर न छा जाते। इसीलिए अब दिल और दिमाग से, अर्थात् संपूर्ण रूप से मुझे अपने अधिकार में पाने के बाद तुमने मुझे हर तरह से ठोकना बजाना शुरू किया।

तुम्हारी पहले की अवशेष कटुता को ध्यान में रखकर मैंने तुम्हारा कोई विरोध न किया। मेरा ख्याल था कि एक दिन तुम हर ओर से

निश्चित और संतुष्ट होकर सतुलित हो जाओगे और तब तुम्हारा अंतरतम कठोर चट्टान की गुफा से निकल कर बाहर आएगा अपने वास्तविक, प्रेमाभिभूत और तरल रूप में और तब बहाव सहज और स्वाभाविक हो जायेगा।

लेकिन तुम मालती का बदला शायद मुझसे लेना चाहते थे। कभी भावावेश में तुम अपने हृदय के उद्गार प्रकट भी कर देते, तो फौरन उसके बाद तुम भीषण प्रतिक्रियावादी हो जाते। मसलन, एक दिन तुम मुझे बहुत शौक से अपना बगीचा दिखाने ले गए। गुलाब तुम्हें मालूम था, मुझे बहुत प्रिय है और तुमने गहरे सुर्ख लाल रंग के गुलाब का गुच्छा मुझे भेंट किया। मैं बता नहीं सकती अपनी खुशी की मात्रा, उस भेंट को लेकर। पहली बार तुमने मेरी पसन्द का ख्याल किया था। आकस्मात् मेरी नजर दूसरी ओर गयी, जहां अधखिले पीले गुलाब झूम रहे थे। पीले गुलाब की सजीदगी मेरी कमजोरी है और पीले गुलाब भी मैंने तोड़ लिये। तुमने शायद हर्ट फील किया कि तुम्हारी पसन्द के सामने मैंने अपनी पसन्द को भी महत्व दिया, और दूसरे दिन मैंने देखा कि सारे पीले गुलाब के पौधे उखाड़ कर फेंके हुए थे।

छात्राओं के साथ तुम्हारी बेतकल्लुफी वैसी ही बरकरार थी। तुम्हारे आमन्त्रणपूर्ण व्यवहार और जरूरत से ज्यादा खुले व्यवहार से किसी को भी गलतफहमी हो सकती थी, और नतीजा, लड़कियां हरदम तुम्हारे पास घिरी रहती थी और तुम अपने अहं को सहलाते हुए बेहद फक्र और आजिजी से उनको टाल न पाने की अपनी असमर्थता बयान करते। मैंने सोचा कि स्त्रियों के समीप्य की कामना पुरुषों में होती ही है, जिसकी वजह से वह उनके बीच इस तरह से व्यवहार करता है कि स्त्री समुदाय उसमें अधिक-से-अधिक दिलचस्पी ले और सान्निध्य दे, इसलिए मैंने तुम्हारी इस कमी को भी पूरा करना चाहा, पर उस दिन…

तुम्हारी एक छात्रा तुम्हारे घर पर तुमसे कुछ अपने नोट्स में मदद लेने आई। वह तुम्हारी शेल्फ से एक मोटी-सी किताब तुम्हारी ओर ला

रही थी। अच्छे-भले तुम बैठे थे कि अचानक न जाने तुम्हें क्या सूझा और तुम उससे बोले—मिस कपूर, जरा अपने हाथ दिखाइए। असमंजस में पड़ी उस लड़की ने शायद मेरी उपस्थिति से आश्वस्त हो अपने हाथ फैला दिए और तुमने यह कहते हुए कि इतने खूबसूरत हाथ, इतना बड़ा बोझ कैसे उठा लेते हैं, उसके हाथों को चूम लिया। उसका चेहरा शर्म से लाल हो गया। उसकी दशा यू थी, मानो भरे बाजार में उसे बेइज्जत कर दिया गया हो। उसने अपनी नोट-बुक उठाई और बिना एक भी शब्द कहे चुपचाप चली गई। तुम ठहाका मारकर हस पड़े···शायद सहज होने की स्थिति के लिए। तुम जो यन्त्रणा मुझे देना चाह रहे थे, तुम उसमें सफल हो गये। मैं गुस्से से अंधी हो गई। मैंने, जिसने एक बार सकल्प किया था कि हर दशा में, हर परिस्थिति में तुम्हे सुखी बनाऊंगी, तुम्हारे दोनों गालों पर कस-कसकर चांटे लगाये और तुम्हे जंगली कहा। उसी वक्त मुझे लगा कि मैं बुरी तरह ठगी गई हूं। तुम्हारे उमडते-फैलते सैलाव के लिए मैं बार-बार बाध बनाना चाहती थी···वह बांध, जो मैंने पूर्ण आत्म-समर्पण से अपनी समस्त मानसिक चेतना को तुम्हारे प्रति शून्य करके बनाया था, वह तुमने हर बार तोड़ दिया। मुझे महसूस हुआ कि बाध तो बनेगा नही, लेकिन तुम्हारे सैलाव मे मैं अवश्य बह जाऊंगी। तुम मुझे नदी का द्वीप बनाना चाहते थे, जिसकी चट्टान से सर पटक-पटककर खत्म हो जाना ही मेरी नियति होती। मैं नदी का द्वीप न बनकर तुम्हारी चट्टान की वह मजबूती बनना चाहती थी, जो तुम्हारे बहाव को निर्मल, समतापूर्ण बनाता, उसे निर्दिष्ट दिशा की ओर इंगित करता। तुम और मैं दो ध्रुवो के समान हो गये। मैं जितना आगे बढ़ती तुम्हारी ओर, तुम उतने ही पीछे हटते चले जाते। दो छोरो का मिलना असम्भव-सा हो गया।

तुम पता नही, जुड़े या नही, लेकिन खुद को मैंने बुरी तरह से टूटा महसूस किया। तुमने मेरी यह स्थिति भांप ली थी और अब, शायद इस क्लाइ-मेक्स के बाद, तुम सगर्व आते और अपने दोनों हाथ बढाकर मुझे अपने पास खीच लेते, सहारा देते। वह एकनिष्ठा, जो पुरुष वर्ग केवल औरतो के

चेहरे

पिछले तीन दिनों से जबरदस्त ठण्ड पड रही है। सारे दिन कुहरा और बादल। पूरे वातावरण मे ढेर सारी घुटन और नमी भर गई है। उसका दिल हमेशा से इस सर्द कोहरे मे डूबने लगता है। अजीब-सी खामोशी है चारो ओर, जिसमे लगता है वह नीचे तक डूब गई है। उसका दिल चाहता है, किसी तरह दौडकर इन बादलों के बीच से सूरज को कुरेदकर बाहर निकाल दे—कुछ गर्मी और जिन्दगी का अहसास तो हो, वरना उसका अन्दर, बाहर सब इस कोहरे की घुटन से, इन सर्द हवाओं के बोझ से घुटकर नीचे अंधेरे-अंधेरे मे डूब जाएगा।

उसने फिर घबराकर खिड़की खोल दी। सांय-सांय करती हवा तेजी से कमरे मे घुसी रुष्ट, अपमानित-सी, जैसे घूमती हुई कमरे मे अपना रोष पैर पटक-पटककर जाहिर कर रही हो। क्या करे—फिर बन्द कर दे खिडकी! उसने बाहर झांका। पूरी कालोनी आजकल शान्त है, वरना इस समय कालोनी के सारे बच्चे अपने शोर से जमीन-आसमान एक किए रहते थे। बच्चे उसे कभी अच्छे नही लगे। बस—केवल दूर-दूर से उन्हें और उनके क्रिया-कलापों को देखते रहना उसे अच्छा लगता है। बच्चा स्वयं मे अपनी एक अलग दुनिया संजोये रहता है, सब लोगो से, चारो ओर से बेखबर और उनकी ये बेखबरी ही मुग्ध करती है उसे। लेकिन इधर दो-तीन दिन से कोई भी नही आ रहा है बाहर और आज उसे ये खामोशी बेहद खटक रही है। कुछ शोर हो, हगामा हो, इस मुर्दा सन्नाटे मे कुछ तो

जान आये। उसने फिर खिड़की बन्द क

खिड़की को बन्द खोल—यह पहर समय आफिस से आने के बाद, हॉस्टल आता या क्या करे। लेटे-लेटे थक जात फिर बैठकर खत लिखा करती दोस्तों क ढेर सारे लम्बे-लम्बे खत। या फिर कभी और लिख-लिखकर फाड़ देती, ढेर लगा अकेलेपन का अहसास कितना भयानक ह था। खिड़की खोलकर बैठ जाती यह श लिए जिसमें उसे हमेशा एक नयापन मि नीव फैली ललाई और उसमें मिले गाढ़ नते जाने और धीरे-धीरे ये सिंदूर मिल लॉन पर लगे ऊंचे-ऊंचे पेड़ों को, उनके किनारे पर खड़े सफेद मन्दिर की चोटी को को ढक लेता और यूं ही कब साझ से रात इस उतरने-बहने कालेपन को देखते हुए पन का काला रंग उसके अन्दर भी उतर खामोशी से भर जाता।

उसके हॉस्टल की सभी लड़कियों और तकरीबन वे सभी शाम को उनके लिए। किसी के दोस्त आते शाम को, त दोस्त जिनके मंगेतर होने की उम्मीद ह उसकी खिड़की के पास से गुजरते तो उसे पड़ती। उसे लगता मानो वे उसका उप कहती कैसी बेवकूफ हो तुम। क्या तुम अपना, जिसके साथ तुम शाम का वक्त बि उसे देख अपने गोरे सुदर्शन प्रेमी के साथ जोड़ों को गुजरते देख वह हमेशा खिड़की द पर्दे के पीछे हो जाती और फिर उसके बा

र दी और पर्दे सरका दिए।

े भी ऐसे ही किया करती थी। उस े के कमरे में बैठे-बैठे, समय नहीं ी, तो उपन्यास ले लेती कोई। या ी, मम्मी को, नीलू और बाबी को स्वयं को सम्बोधित करके लिखती देती कागजों का। शाम के वक्त ोता है, ये उसे उस वक्त भी मालूम ाम का डूबता हुआ सूरज देखने के ता है। असावधान सूरज की बेतर- के ढेर सारे शेड्स जो गहरे होते धुंधलका—बहते हुए सामने के पीछे-से दीखते सड़क के उस पार और चारों ओर के बिखरे जीवन हो जाती, पता नहीं चलता था। उसे लगता मानो शाम के अकेले- या है। सारा जिस्म अजीब सर्द

कोई-न-कोई दोस्त अवश्य थे साथ चली जाती आउटिंग के किसी के मंगेतर या कुछ के वे ती भविष्य में। वे लोग जब फौरन खिड़की बन्द कर देती हास उड़ाती हुई, आंखों से ही क भी दोस्त नहीं बना सकती ा सको? काली भद्दी-सी जया, ौर सटकर चलने लगती। इन न्द कर दिया करती या हटकर । उसकी नजरें दूर तक उनका

पीछा करती रहती। शाम के समय केवल कुछ ही बच जाती हॉस्टल में जिनमें ज्यादातर वे अविवाहित लड़कियां थी जो धीरे-धीरे प्रौढ़ावस्था की ओर बढ़ रही थी। अक्सर वे भी शाम को सज-संवरकर या तो बाजार आदि चली जाती, शॉपिंग के बहाने या फिर सिनेमा। कुछ नही तो एक-दूसरे के कमरे में बैठकर स्कैण्डल्स डिस्क करती और बात-बात पर जी-भर ठहाके लगाती।

इस अकेलेपन के अहसास ने ही शायद उसे राजी कर लिया था कि वह शादी कर ले। उसने सोचा था कि कम-से-कम इन सर्द खामोश शामों से छुटकारा पा लेगी वह। उसे कभी भी ज्यादा बोलने की आदत नही रही और न ही जबरन अपने-आपको स्थापित करने की, इसलिए एडजस्ट कर सकती है वह किसी के भी साथ।

लेकिन क्या सचमुच ही खामोश रहने की आदत है उसकी? वह तो हर वक्त अपने में डूबी कुछ-न-कुछ बोलती ही रहती है। उसे लगता है कि अपने ही भीतर एक अलग दुनिया है उसकी जिसे उसने अपनी खामोशी की मोटी दीवारों से ढक, छिपा रखा है। ज्यादा बोलने और मुखर होने से कहीं उसका पता दूसरों को न चल जाय। इस जगह किसी का भी प्रवेश उसे पसन्द नही। यहां का सब कुछ उसका है, सिर्फ उसका। उसे लगता है उसका जबरदस्त पजेसिव नेचर केवल यहीं सन्तुष्ट हो पाता है। यहां अतुल भी केवल उसका है, उसके कोई दोस्त नही, साथी नहीं, अतुल की वह सैक्रेटरी मिस मित्रा नही, अन्य ढेर सारी मित्रें भी नही। अपने भीतर की यह दुनिया उसने आज नही, बचपन में ही बना ली थी और उस समय वहां केवल उसके पापा हुआ करते थे। नीलू को, और छोटे बाबी को किसी को भी अन्दर आने की इजाजत नही थी। उसे अपने पापा बहुत अच्छे लगते थे। लम्बे-चौड़े, विशाल आकर्षक। वह जब हंसते थे ठहाका मारकर तो लगता मानो सारा वातावरण इण्डयूस हो गया हो उनकी हंसी से। उनके चारों ओर जीवन लहराता था। उस समय भगवान राम या कृष्ण के चेहरे के चारों ओर तेज प्रकाश का घेरा देखकर उसे लगता था कि पापा के चारों ओर भी ऐसा ही घेरा है खुशी का, जिन्दगी का। वह समझ नहीं पाती थी कि वह भी पापा की तरह क्यों नही हंस पाती, उतनी ही जोर से जो

भर के। जब कभी कोई आकर्षक व्यक्तित्व उसके सामने आया, उसने हमेशा कहीं-न-कहीं से उसमें अपने पापा को ढूंढ निकाला है। उसे लगता है दुनिया का कोई भी विशिष्ट जन, आकर्षक एवं साधारण व्यक्तित्व, उनके अंश के बिना अधूरा है। लेकिन स्वयं वह? वह तो उनके सामने भी कभी मुखर नहीं हो पाई। नीलू की तरह कभी वह उनके गले से नहीं लटकी, कभी उनके पैरों में, बाहों में नहीं झूल सकी। बस उन्हें देखती रह जाती एक अनोखेपन के भाव से, गहरी चाहत के अन्दाज से।

पापा ऑफिस से आते और नीलू रोज दौड़कर उनके गले से लटक जाती; पापा आ गये···चाकलेट दो और वे उसे चूमकर प्यार करते और चाकलेट देते निकालकर उन दोनों के लिए। लेकिन वह चुप खड़ी बौराई-सी देखती रहती। वह कभी न कह पाई कि पापा मैं भी तो आपको प्यार करती हूं, बहुत प्यार करती हूं। मुझे चाकलेट नहीं चाहिए, गुड़िया भी नहीं चाहिए केवल अपने पापा चाहिए, वे जो नीलू के नहीं हैं, छोटे बाबी के भी नहीं जिसे ऑफिस से आकर वह सबसे पहले प्यार करते हैं और वह हर वक्त उनकी गोद मे चढा-चढा घूमता है। उसे समझ नहीं आता था कि वह उन्हें ये सब बताये, सारी बातें कहे, और तभी से उसने खुद से बातें करना शुरू कर दिया, अपने भीतर की अलग दुनिया बनानी शुरू कर दी। रोज रात को जान-बूझकर वह बाहर सोफे पर सो जाती और पापा के उठाने पर भी सोते रहने का बहाना करती। तब वह उसे गोद में उठाकर उसके बिस्तर पर सुला देते। उस समय मानो वह बाबी को और नीलू को भी दिखा देती कि पापा मेरे भी हैं, मुझे भी गोद में लेते हैं।

टन्-टन्-टन्-टन्-टन्-टन्-टन्-टन् आठ बज गये हैं। अतुल क्यों नहीं आया अभी तक? इन अकेले क्षणों में उसे लगता है कभी-कभी कि वह हॉस्टल वाला कमरा यहां इस कोठी मे भी चिपका चला आया है या फिर खालीपन का अहसास उसके साथ इस कदर जुड़ गया है कि वह कहीं भी जाये, पीछा नहीं छोड़ता। उसका दिल चाहता है कि वह उड़ जाये आसमान में सूक्ष्म होकर, शरीर छोड़ दे नीचे, झाड़कर कपड़ों की माफिक, देखे सब क्या-क्या

साथ चलता है। पहले जब कभी शाम के वक्त वह विवाहित जोड़ों को सजे-धजे घूमते देखती तो बहुत अजीब लगता। वह सोचती, शादी के पहले साथ-साथ घूमने में शायद कोई अर्थ हो, सार्थकता हो, लेकिन शादी-शुदा जोड़ों का घूमना-टहलना मानो वे जबरदस्ती अपने सुखी और सन्तुष्ट होने का प्रमाण दे रहे हों। अपने-आपको छलने के साथ ही गैर शादी-शुदा लोगों को भी गुमराह कर रहे हों। लेकिन जब इन अकेले क्षणों में, इन एकाकी शामों में उसे लगता है, शायद वह निर्थकता, वह छलावा, कुछ मतलब का ही होता था। टर्र-टर्र ऽऽ र्र ऽऽऽऽ शायद अतुल आ गया हो। उसने लगभग दौड़ते हुए दरवाजा खोला। ओह—यह तो विनय है। अतुल होता तो एक हाथ से दरवाजा बन्द करते हुए दूसरे हाथ से उसे समेट लेता और फिर एक हल्का-सा प्यार गालों पर, फिर आगे बढ़ता। इस वक्त वह ऐसा ही कुछ चाहने की स्थिति में थी, लेकिन उसे देखकर एकबारगी बुझ-सी गई। विनय अब बोल रहा है तो बस बोलता ही चला जायेगा। उसके लिए कोई जरूरी नहीं कि दूसरा भी बोले। विनय की ये हमेशा से आदत है कि वह केवल अपनी सुनाता है, दूसरे से सुनने की इच्छा कतई नहीं रखता और उस जैसी खामोश भाभी-सा अच्छा श्रोता कहां मिलेगा। उसे इस समय कुछ भी सुनाई न दे रहा है। कुछ समझ नहीं आ रहा है कि वह क्या बोल रहा है, कहां की कह रहा है, किसके बारे में कह रहा है। बस, उसका दिल चाह रहा है कि अतुल जल्दी से आ जाये इस समय।

और यह सोचते-सोचते वह कल्पना करने लगी कि सामने विनय नहीं अतुल बैठा है। ऐसे ही कभी-कभी वह अतुल की ओर देखती रहती है एक-टक तो धीरे-धीरे ऐसा मालूम होता है कि अतुल का चेहरा पापा के चेहरे में बदल गया है और तब वह उसे जोर से बाहों में भींचकर प्यार करने लगती है वैसे ही जैसे बचपन में नीनू किया करती थी पापा को जोर-जोर से, और तब वह महसूस करती है कि वह आश्वस्त और संतुष्ट होती जा रही है। इस वक्त भी वैसी ही कुछ इच्छा उसकी हो रही है। उसका दिल चाह रहा है कि ये विनय इस समय अतुल में बदल जाये और वह अपनी आंखों में वही जादू की नजर भर देख रही है उसे लगातार। वह चाहती है अतुल इस समय उसे अपनी बांहों में भर ले, उसके साथ मिल जाये, एक ही

जाये। वह नजर हटाती है कहीं विनय उसकी इस इच्छा को भांप न गया हो, और बेतरह लापरवाही से घड़ी की ओर देखती है। बड़ी देर हो गई विनय को, अब घर जाना चाहिए। कह दूं ये इससे वरना जितनी देर तक यह बैठेगा और अतुल नहीं आयेगा चेहरे पर चेहरे चढ़ते जाएंगे, एक के ऊपर एक और फिर पता नहीं कब, कैसी इच्छा मन में उठने लगे।

-

परतें

उसने आज अलमारी पर चढ़कर ऊपर से पोटली निकाल ली नीचे—ढेर सारी धूल और मकड़ी के जालों में सनी हुई। पोटली के साथ ही धूल उसकी आंखों में भर आई। उसे एक हाथ में थाम, धोती के पल्ले से उसने अपनी आखें पोंछी। पानी बह आया था उसकी आंखों से। कपड़े की गांठ खोलकर उसने बाहर का कपड़ा हटा दिया। पुस्तकें एक और लाल कपड़े में लिपटी हुई थी। तीन-चार साल के निर्वासन के बाद आज फिर वे उसकी परिचित थीं। उसने हौले-से हाथ फेरा उस लाल कपड़े पर, मानो उस परिचय को फिर ताजा कर रही हो उंगलियों के स्पर्श से। उसे लग रहा था कि इतने वर्षों तक उससे अनजाने में एक अपराध होता रहा है। आज इस अपराध की भावना से उसका मन भारी-सा हो रहा था। यों कुछ दिनों से बहुत याद आ रही थी उसे इनकी लेकिन बार-बार कोई चीज मन को रोकती थी—क्या बैकवर्डनेस है! ये ही रूढ़िया है, संस्कार हैं, जो हम पर हावी होकर हमें रोकते है आगे जाने से? आज आदमी चांद पर जा रहा है और हम—! और हर बार वह सर झटक कर इस इरादे को हटा देती। बहुत बार उसके मन में आया कि शायद कहीं कुछ गलत हो रहा है। ये सब बातें सही हैं, लेकिन फिर भी कहीं—कुछ नहीं! यू आर ए साइंस स्टूडेंट। यू शुड बी लॉजिकल!

लेकिन इस साइंस की पढ़ाई में भी तो···उसे याद है कि वह रात-दिन एक कर देती थी इम्तिहान के दिनों में···खाली फर्स्ट क्लास से कुछ नहीं

होता, उसे गोल्ड मेडल लेना था। सारी पढ़ाई के दौरान, बचपन से साथ रखी वह शिव की मूर्ति उसकी मेज पर रखी रहती और वह पढ़ती रहती। हमेशा की भांति इम्तिहान के दिनों में भी रोज सवेरे उनके सामने नत-मस्तक होते हुए उसने कभी यह न कहा कि उसे क्या चाहिए। वह समझती थी कि भगवान सबके हृदय की बात जानते हैं।

बचपन में अम्मा ने उसे यही सब बताया-सिखाया था और उसने हमेशा के लिए इसे मन में रख लिया था। कभी कुछ गलत, अनुचित करते समय उसे अम्मा की बात कौंध जाती कि फौरन गलती महसूस करो और उस सर्वशक्तिमान से क्षमा मांगो⋯कुपुत्रो जायेत् क्वचिदपि कुमाता न भवति⋯और वह इसे कभी नहीं भूली।

उसने पोटली से स्तोत्र की पुस्तक निकाल ली और धीरे-धीरे उसे साफ करने लगी। उसे ही देख रही है मां दुर्गा⋯दुष्ट, मेरा स्मरण भुला दिया तुमने! जिसे तुम ज्ञान, आधुनिकता समझती हो, वही है इस संसार का मायाजाल! तुमने ज्ञान के भ्रमजाल में फंसकर अपनी आत्मा की आवाज को विलुप्त कर दिया! मिला न तुम्हें इसका फल! अभी क्या है, अभी और! उसने पुस्तक को माथे से लगा लिया। सुबह का भूला शाम को घर आ जाए, तो वह भूला नहीं कहलाता⋯कुपुत्रो जायेत् क्वचिदपि कुमाता न भवति⋯।

यह एक से ज्यादा देवता नहीं पूज सकती थी और वह भी तो उसके अंदर अनजाने में प्रतिष्ठित हो गए देवता का आदेश ही था।

साइंस-कांग्रेस। राजीव से मुलाकात।

राजीव के पेपर की बहुत चर्चा थी कांग्रेस में। सर्वथा मौलिक परि-कल्पना प्रस्तुत की थी उसने मेटाफिजिक्स के अपने पेपर में। उसने भी अपना पेपर पढ़ा था, लेकिन वह साधारण-सा ही था। सेमिनार के बाद पेपर के विषय में ही बातें करते-करते आ गए दोनों कमरे में। वह बहुत तन्मयता से उसे अपने पेपर के विषय को समझा रहा था। उसके हाथों का संचालन, उसके हाव-भाव, विषय के प्रति उसकी निष्ठा और घनिष्ठता के ही परिचायक थे। अपनी बात खत्म करने के बाद जब उसने विषयांतर किया, तब चारों ओर नजर दौड़ाई। मेज के कोने पर रखी थी उसकी

दुर्गा सप्तशती।

—व्हाट्स दि ऽऽऽ स ? वह यों चौंका, मानो वह उसके लिए सर्वथा नवीन वस्तु हो। वह आंखें फाड़-फाड़कर पुस्तक को उलट-पुलट करने लगा, मानो इत्मिनान कर लेना चाहता हो कि जो वह देख रहा है, वह वही है, कुछ और नहीं। जब भली-भांति जांच-पड़ताल के बाद उसे यकीन हो गया कि वह ठीक ही समझ और पहचान रहा है, तब उसने पूछा—क्या यह आपकी है ?

उसने बहुत अटपटा महसूस किया। इसमें इतना आश्चर्य दिखाने की क्या बात है ? एक हिंदू होने के नाते क्या वह जानता नहीं कि क्या है यह ? लेकिन फिर भी भीतर के एक अनजाने से अपराधी भाव से उसने स्वीकृति दी, हालांकि वह समझ नहीं पायी कि इसमें शरमाने या झिझकने की क्या बात है।

—इट्स सरप्राइजिंग ! आप साइंस स्टूडेंट हैं, साइंस कांग्रेस में पेपर पढ़ती हैं और साथ में यह अंधी दौड़ ! फिर जब आप लोगों का यह हाल है, तो बेपढ़ा आदमी क्या करेगा···!

—मिस्टर राजीव, इट्स माइ पर्सनल अफेयर···प्लीज ! और बात खत्म कर दी थी उसने।

लेकिन कहां खत्म हो पायी बात ! लगता था, उस रोक के बाद दिमाग के अनंत द्वार खुल गए थे सोचने के लिए। रोज सवेरे जब पाठ के लिए वह बैठती, पुस्तक निकालती, राजीव की विस्मय भरी बड़ी-बड़ी आंखें सामने तैर आतीं···इंगित करती हुई उसकी ओर···उपहास करती-धिक्कारती-सी। अजीब-सा महसूस होने लगता उसे। एक दुविधा में उसका मन घिर जाता। कभी स्वयं पर लज्जित-सी होती वह और कभी सिर झटक कर पूर्ववत् सहज मनःस्थिति में होने का प्रयास करती, पुनः अपनी पूर्व संचित निष्ठा को स्थापित करने की चेष्टा करती हुई।

लेकिन वह आश्चर्यमिश्रित स्वर बार-बार उसके कानों में गूंज कर सदा के उसके संस्कारगत धर्मभीरु मस्तिष्क को शायद विद्रोही बना देने पर तुल गए थे। लगता था, दो पक्ष हो गए हैं उसके भीतर। एक स्वयं उसका जन्म-प्रदत्त, सरल हृदया मां और सनातनी पिता की देन, और दूसरा

आकर्षक, बेपरवाह युवक की युक्तियों से भरा सर्वथा तर्कसंगत और सशक्त। उसे लगा, उसका पक्ष ढीला पड़ रहा है कहीं से, चुपचाप बैठकर धोखा देना जा रहा है और शायद मन की इस दुर्बलता का, उसकी इसी हार का परिणाम था उनकी क्रमशः घनिष्ठता।

राजीव के साथ बैठकर बातें करते उसे लगता कि वह एक दूसरी ही दुनिया में है। वह दुनिया, जो उसने कभी नहीं देखी थी, कभी जिसके बारे में नहीं सोचा था। उसे फुरसत ही कब मिली यह सब सोचने-समझने के लिए! बचपन में ही सिवा किताबों और अपनी परीक्षा के शायद ही उसने अन्य कहीं दिलचस्पी ली हो। कभी दूसरे नंबर पर रहना स्वीकार नहीं किया था। परीक्षा उसका बड़ा संघर्ष स्थल था और अव्वल नंबर पर रहना उसका सबसे बड़ा लक्ष्य और केवल किताबें ही उसकी साथी थीं। उसने कभी नहीं सोचा कि इसी दुनिया में उसके आस-पास की चीजें इस कदर भिन्न और बदली हुई हैं जो सर्वथा नवीन हैं उसके लिए। यहां ऐसे लोग हैं जो अपना आराम से खाता-पीता जीवन छोड़कर दूसरों से इतना मतलब रखते हैं कि स्वयं उनका अपने से नाता टूटा हुआ है। उसे समझ नहीं आता कि राजीव एक ब्रिलियंट स्टूडेंट जिसकी रिसर्च पूरी होने को है, अपने क्षेत्र में प्रतिभाशाली है, क्यों राजनीति में अपना सिर खपाता है! उसने मार्क्स का नाम भी शायद पहली बार उसके द्वारा ही सुना।

उसे ताज्जुब हुआ कि ये लोग धर्म और भगवान की अवज्ञा ही नहीं करते, वरन् उसका उपहास उड़ाते हैं, टांग खींचते हैं, लेकिन फिर भी इनको कुछ···और उसे लगने लगा कि यह नयी दुनिया शायद आकर्षक है, अद्भुत है। उसे राजीव भी एक अद्भुत व्यक्ति मालूम देता। उसके तर्क अकाट्य होते। वह सोचती, कैसे जानता है वह यह सब? कहां से जानता है?

राजीव दूसरों से बहस करते समय एक दूसरा ही व्यक्ति हो जाता। अपराजेय पर्वत के समान गंभीर और दृढ़। वह उसके चेहरे पर नजर जमाये उसे देखती और बस देखती ही चली जाती और तब वह उसे नितांत अपरिचित-सा, किसी दूसरे ही लोक का प्राणी लगता। उसे लगता, सामने बैठे राजीव और उसके बीच में इतनी-इतनी दूरी है कि अनंत काल तक

चलते रहने पर भी वह उसके पास नहीं पहुंच सकेगी। वह उसकी पहुंच, उसके घेरे से बाहर है···सर्वथा दूर और तब उसका दिल चाहता, वह छोटी, बौनी-सी उसके सामने जाकर उसे अपने हाथों से घेर ले। उसके माथे पर गिर आये बालों को धीरे-से उठाकर ऊपर कर दे। मुंह का पसीना अपने आंचल से पोंछ दे। लेकिन यह सब मन में ही सोचती रह जाती वह और चेहरे से निर्विकार बनी चुपचाप घूरती रहती उसे पूर्ववत्···कोई हल्की-सी भी हरकत किये बिना और वह यथावत बोलता रहता।

और धीरे-धीरे न मालूम कब उसके भीतर का सब कुछ पुराना निकालकर फेंक डाला उस चतुर बाजीगर ने और कुछ दूसरा, सर्वथा नवीन ही, अंदर कर दिया। वह खुद भी नहीं समझ पायी इस बदलती प्रक्रिया को। महसास केवल उस दिन हुआ, जब उस बार महाशिवरात्रि के दिन उसने ऐलान कर दिया कि वह निर्जला व्रत नहीं करेगी। अचानक विस्फोट सा हुआ घर में। सर्वथा अप्रत्याशित और एक बार फिर राजीव जैसे ही आश्चर्यचकित भावों का सामना हुआ मां और पिता की आंखों में।

पर आश्चर्य! इस बार इन निगाहों का सामना करने में बिल्कुल अटपटा नहीं लगा उसे। शायद मन पहले से ही इस पूर्वनियोजित योजना की तैयारी कर चुका था। मां को पहले ही इन लक्षणों का पूर्वाभास हो चुका था उसकी ढीलमढाल और पहले जैसी निष्ठा न देखकर। लगा, स्वतः उसके अंदर से भावों का रेला बाहर आने लगा···क्या है यह धर्म-कर्म! सब धोखा है! खुद को धोखा! अनिश्चित के सहारे जीना, मानो कमजोर का हवाओं में विश्वास टांगना है। और हम ब्राह्मणों ने ही धर्म के नाम पर सदा एक्सप्लाइट किया है लोगों को! अब नहीं चलेगी यह इजारे-दारी! लगा, उसका मन स्वयं को समझा रहा था। आश्वस्त कर रहा था। राजीव उसके अन्दर बैठा न जाने कैसे अदृश्य तंतो द्वारा उसका संचालन कर रहा था।

फिर तो यह एक आश्चर्य बनकर सबके सामने आ गया। कैसे वह दुबली-पतली, सबसे अलग-थलग, मौन रहने वाली और बेहद डरपोक

लड़की एक के बाद एक खटखटाहट विद्रोह की सीढ़ियां कूदती चली गयी। सबको क्या, खुद उसे भी ताज्जुब था। उसे लगता, उसके अपने सोचने-समझने की शक्ति खत्म हो गयी है। हर किसी बात पर वह सोचती कि अगर राजीव होता, तो वह इस समस्या को कैसे लेता। उसका क्या जवाब होता। वह कैसे इस पर क्रियारत होता और स्वतः उसका रास्ता साफ हो जाता। तभी तो वह पैर रखती चली आई निःसंकोच आत्मविश्वास के साथ।

यही वह आत्मविश्वास था जिसके सहारे उसने वह महत्त्वपूर्ण निर्णय भी ले लिया था। दरअसल उस स्थिति की उसने कभी आशा नहीं की थी। उस राजीव के सामने, जिसने अपना जबरदस्त कैरियर छोड़कर भुखमरी का रास्ता अपना लिया था, वह खुद को बहुत छोटा और बौना महसूस करती। उसे लगता, उसके बराबर वह कभी नहीं पहुंच सकती। केवल उसके पीछे, उसकी छाया में डूब चलती रहेगी। अजीब सम्मोहन की अवस्था में महसूस करती वह अपने आपको। उसे लगता, उसने जो बचपन में पढ़ा था, यही वह अद्भुत स्वर्गिक प्रेम था। और यह सोचकर वह कभी गर्व से और कभी प्रसन्नता से भर जाती। फिर एकबारगी राजीव के प्रति श्रद्धा से उसका मन भर आता। तब वह कैसे उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती, जो उसे अपने बराबर ला रहा था। हमेशा-हमेशा के लिए साथ रहने का अवसर दे रहा था। उसने निश्चय किया कि वह हर हाल में उसके साथ रहेगी। यह अवसर नहीं छोड़ेगी। उसे खुद नौकरी करनी पड़ी अगर तो वह खुशी से करेगी···अपने लिए·· उसके लिए।

और उसने अब किसी की भी न सुनी। सबके लिए एक धमाका छोड़ कर उस 'निकम्मे', 'भुखमरे' कम्युनिस्ट से शादी कर ली।

उसे याद आता है वह क्षण, जब उसने राजीव को उसके प्रस्ताव की स्वीकृति दी थी। खुशी से उसके पैर जमीन पर न पड़ते थे। वह राजीव, जो अब तक आकाश-कुसुम था, अब उसका होने जा रहा था···उसका, केवल उसका। उसे लगा, मानो इतना बड़ा फैला आकाश उसकी बांहों में समाने जा रहा है। एकबारगी थोड़ा सा भय लगने लगा उसे, कैसे असीम को समेट पाएगी बांहों में! वह असीम, जो अब उसका था,

अपनी निधि था। उसे दुनिया मे अब कुछ नही चाहिए। सब कुछ एक बिंदु पर केन्द्रित हो गया था।

लेकिन उसे मालूम न था कि विशाल आकाश किसी एक का नहीं है, यह सबका होता है। सूरज किसी एक घर का नही होता, लेकिन हर एक उसे अपनी सीमा मे देखकर अपने ही घर का समझता है। उसने भी यह भूल की थी। आकाश को अपनी बाहो के घेरे मे बद कर लेना चाहा था। चमकीले सूरज को अपने दामन मे छिपा लेना चाहा था। पागल थी वह भी लेकिन क्या करे, मन ही तो है। जिसका हो जाये, उस पर फिर अपना ही अधिकार देखना चाहता है। बहुत स्वार्थी होता है यह मन भी और उसने शायद जिन्दगी की आवाज हमेशा मन के रास्ते से ही सुनी थी।

उसने सुना था और देखा भी था कि शादी के बाद कुछ दिन लोग यों ही गुजार देते हैं। जीवन के अविस्मरणीय दिन होते है ये। लेकिन राजीव शादी के दो दिन बाद ही दिल्ली चला गया था। एक जरूरी मीटिंग थी उसकी। कितना अपमानित महसूस किया था उसने अपने आपको! उसे लगा कि उसके त्याग का, उसके विद्रोह का कोई मूल्य नही आंका राजीव ने! लोग क्या सोचते होगे! कभी होता है ऐसा?

उसी दिन उसे लगा कि कही कोई भूल तो नही हुई उससे? एक बार उसके दिमाग मे यह विचार भी आया कि कही ऐसा तो नही कि शुरुआत ही गलत हुई हो। उसने तो कहा था राजीव से कि और सब ठीक है, लेकिन क्या हर्ज है अगर शादी पवित्र मत्रोच्चारो के साथ हो! स्वय उसका भी विचार था कि जीवन-भर के सम्बन्धों का सवाल है, मा-बाप का आशीर्वाद भी साथ नही है, अतः अच्छा होता अगर मंगलमय मत्रों और शुभध्वनि के बीच यह कार्य संपन्न होता। लेकिन राजीव ने बहुत स्पष्ट कहा—मेरी अपनी मान्यताएं हैं और वे मुझे इन फिजूल के सस्कारो को मानने से रोकती हैं। तुम मेरे विचारों से परिचित हो। तुमसे मैं जीवन मे, हर क्षेत्र मे सहयोग की कामना करता हू···और उसे लगा कि वे विचार और मूल्य उसके दिमाग मे बैठे हों या नहीं, उसका दिमाग लाजिक्ल और

माइंटिफिक हो पाया हो या नहीं, लेकिन मन के ऊपर उसका सम्मोहन फिर छा गया है और वह उसका विरोध नहीं कर पायेगी।

सचमुच उसने विरोध कभी नहीं किया उसका। हमेशा सोचा कि राजीव उससे सहयोग चाहता है। वह केवल उसका नहीं, सबका है। कितने लोग हैं जो दूसरों के लिए जीते हैं अपना सब कुछ छोड़कर! और यह सोचते-सोचते वह गर्व से भर जाती।

लेकिन इसके बावजूद कहीं पर हृदय का एक कोना इस गर्व में साथ न देता, चुप रहता। फिर भी उसने हमेशा प्रयत्न किया कि संतुलित रखे वह अपने को। राजीव दिन-दिन भर घर से बाहर रहता। ढेर सारे कामों में व्यस्त और तब वह बहुत अकेला महसूस करती अपने को। राजीव की अनुपस्थिति में मानों दिमाग काम करना बंद कर देता और तब प्रवाह होता केवल हृदय का। साथ होते हुए भी एकाकी-बोध का। लेकिन उसके आते ही वे लहरें तिरोहित हो जातीं। उसका मस्तिष्क स्वस्थ हो जाता पूर्ववत और यह 'सी-सा' का खेल निरंतर चलता रहता। उसे कभी-कभी लगता, वह बहुत थक गई है इस निरंतर नीचे-ऊपर-नीचे के खेल में, तब न जाने क्यों उसे याद आने लगता वह शिवस्तोत्र, जिसे वह पहले से पढ़ा करती थी उद्वेलित क्षणों में शांति के लिए, संतुलन के लिए।

इन दिनों राजीव कुछ ज्यादा ही व्यस्त हो गया है। शायद कोई आन्दोलन शुरू होने वाला है। उसकी पार्टी की एक प्रमुख कार्यकर्त्री के आने पर वह उसे लेकर तीन-चार दिनों के लिए पूरे प्रांत के दौरे पर गया है। उसका दिल बेतरह घबराने लगा है इन दिनों। न जाने क्यों उस महिला नेत्री को देखकर ईर्ष्या-सी होने लगी। उसे लगा, उसके स्थान पर अगर वह स्वयं होती, तो कितना अच्छा होता! इस वक्त एकबारगी उसे लगा कि राजीव के व्यक्तित्व से वह सम्मोहित तो हुई, मंत्रमुग्ध-सी साथ तो चलती रही, लेकिन मानसिक रूप से उसने कभी अपने आपको उसके लिए, उसके विचारों के लिए, उसकी मान्यताओं के लिए तैयार नहीं किया। अगर किया होता, तो आज वह भी अपने आप में वह इतनी अकेली न होती। उसके सपने न टूटते। उस महिला के साथ ही, संभव है, शायद राजीव के साथ वह भी—सच, राजीव के साथ रहने-घूमने में, साथ

भटकने-परेशान होने में कितनी आत्मतुष्टि होती उसे। उसे लगने लगा कि उस विशाल आकाश के सामने वह एक बादल का टुकड़ा-भर है, जिसे हवा जब चाहे, हटाकर कोने में इधर-उधर कर देती है। राजीव शायद एक ऐसा देवता है उसका, जो उसकी पहुंच के बाहर है।

धूल झाड़ती हुई सोचने लगी वह। सच! धोखे भी कमजोर आदमी की जिंदगी के लिए कितने जरूरी होते हैं और मन, कितने छलावे देता है, कदम-दर-कदम आगे रखता, बहकाता। छोटा खिलौना मिल जाये तो फिर बड़े की ख्वाहिश। शायद यही जिन्दगी का नाम है। कभी राजीव का सिर्फ साथ भर चाहा था। आज उसकी लम्बी परछाई अंधेरा बन काटने आती है। अब राजीव का हाथ पकड़ उसे कहना पड़ेगा—ठहरो, मैं भी तुम्हारे साथ हूं। कब तक तुम्हारी छाया पकड़ती दौड़ूंगी। मेरा हाथ थाम कर अपने साथ-साथ ले चलो न मुझे भी···। उसे लगा अभी मन की परतें ख़त्म नहीं हुई है। ढेरों दबी है, नीचे, खुलती तह की तरह नये रूप उजागर करती हुई।

उसने धूल झाड़कर पोटली को उसी लाल कपड़े में और कस कर बांध ऊपर फेंक दिया। उसे आवश्यकता नहीं अब इन छलावों की। पल्ला कमर पर कसते हुए सोचा उसने—आज सारी सफाई ही क्यों न कर ली जाय घर की।

टूट जाने के बाद

उनकी आखें जब तक पानी से धुधला न आई तब तक नजर दूर के खंडहरों पर जमी रही। चारपाई उन्होंने बाहर के बरांडे में लगवा रखी है। बरांडा ऊपर से ढका है। सामने रेलिंग है और उससे दूर तक दीखता निर्जन विस्तार। ऊंचे-ऊंचे पेड़ और गंदे, सूखे पत्तों से ढकी जमीन। एक पतली पगडंडी भी इस घास उगे मैदान में बन गई, शार्ट कट रास्ता चलने वालों की वजह से। इन घने पेडों के बीच से दीखते हैं रेजीडेंसी के पुराने टूटे खंडहर और धूल से ढकी ध्वस्त पुरानी लखोड़ी ईंटों से बनी कभी की आलीशान इमारतें। न जाने क्यों यहां बरांडे में चारपाई पर लेटकर इन गिरते धूल-धूसरित खंडहरों को निहारना उन्हें अच्छा लगता है। इस नयी कालोनी में आने पर शुरू-शुरू में उन्हें यहां का सुनसान माहौल बुरा लगा। पुराना मुहल्ला बहुत घना और भरा-पूरा था इसलिए यह वीरानापन खला उन्हें। धीरे-धीरे उन्होंने इस बरांडे में उठना-बैठना शुरू किया। अपनी कुर्सी यहां डलवा ली और सबेरे बैठकर अखबार पढ़ा करते। शाम ऑफिस से आने के बाद यहीं बैठने लगे, चाय पीने के लिए। आज सबेरे उन्होंने अपनी चारपाई भी यहीं डलवा ली मानो अपने आपको घर के इस कोने में चुपचाप व्यवस्थित कर लिया हो। सिमट से गये हैं वह इस ओर। उन्हें याद है पुराने मकान की खिड़की से सामने मेहरोत्रा साहब का घर दीखता था। मेहरोत्रा साहब के पिता भी इसी प्रकार सड़क के किनारे बरांडे में चारपाई डाले पड़े रहते थे। तब वह सोचते थे कि क्या यह

हिन्दुस्तान के मध्यवर्गीय घरो की परपरा ही है कि घर के वूढे को कमरा नहीं मिलता—बरांडा ही उसकी नियति होती है। वह सोच-सोचकर अपने लिए भी कल्पना करते रहते हैं। उन्हे कौन वराडे तक पहुचायेगा—हस देते वह मन-ही-मन। चार सतानें और सभी सुकन्याएं।

इस समय लेटे-लेटे वह सतोष से भर उठते है कि उन्हें किसी ने यहा तक नही पहुचाया है। खुद ही उन्होंने यह जगह छाटी है। पता नही, साझ के इस निर्जन वीरान झुरमुटो मे खंडहर देखने के लिए या कुछ और—कुछ समझ नही पाते वह ठीक से। रिटायर होने के बाद बरांडे में पहुचते तो शायद हारेपन का, अपने फालतूपन का एहसास होता। शुक्र है अभी कमाते हैं और वह भी अपने ऑफिस की सबसे ऊची एक्जीक्यूटिव पोस्ट पर रहकर हालाकि यह मजिल उन्होने बहुत-सी सीढ़िया चढकर धीरे-धीरे तय की।

इधर तीन-चार दिन से उनके जोडो मे दर्द हो रहा है। कही गठिया का दर्द न हो। लगता है बुढापा आ गया है। रमा ने शायद बिस्तर ठीक कर दिया है कमरे मे और अभी तीसरी बार आकर कह गई है भीतर लेटने के लिए। उन्हें एक अनजाना सुख महसूस होता है जब रमा और सुमिता उनसे जिद करती हैं कि उन्हें बाहर ठंड मे नही बैठना चाहिए, वरना दर्द बढ़ेगा—और वह चुपचाप हंस देते हैं। उन्हें अच्छा लगता है कि ये लोग उनसे बार-बार जिद करें और वे यू ही सहज भाव से टाल दें। न जाने क्यू एक छिपी जीत का अहसास होता है। सोचते है कि इस खुली रेलिंग पर चिकें डलवा कर पर्दे लगवा लें, हवा से बचाव हो जाएगा। मन-ही-मन अब वह इसी बराडे में रहने का निश्चय कर चुके हैं। यू भी इस मकान मे तीन ही कमरे है। ड्राइंगरूम मे अक्सर सुमिता की दोस्तो का जमघट लगा रहता है। अपनी सभी बहनों मे सबसे ज्यादा सोशल है वह। सबमें छोटी होने की वजह से जिद्दी भी ज्यादा ही है। या तो दोस्तो का जमघट घर पर जमेगा या खुद उनके साथ घर से बाहर। यही वजह है कि रमा से बिल्कुल नहीं पटती उसकी। जितने समय घर पर रहेगी हर

समय मां से झांय-झांय। मां-बेटी में सचमुच यूं लड़ाई होती है जैसे देवरानी-जिठानियों के बीच। वह चुप ही रहते हैं इस दौरान। इधर छुट्टी की वजह से हर समय घर पर ही रहते हैं वह इसलिए शायद ज्यादा खल रहा है उन्हें यह शोरगुल—वरना तो पता भी नहीं रहता कि क्या हो रहा है घर में, कैसा हो रहा है। लगता है सूत्रों से धीरे-धीरे कटते जा रहे हैं वह।

ऐसे ही अंतरंग एकाकी क्षणों में मालती का बहुत ख्याल आता है उन्हें। मालती की शादी के बाद से अपने आपको उन्होंने न जाने क्यूं बहुत अकेला और असहाय महसूस किया है। अपनी लड़कियों में हालांकि उन्होंने कभी कोई भेद नहीं किया पर फिर भी न जाने क्यूं उसे उन्होंने लड़की नहीं माना। हमेशा कहते रहे, तू तो मेरा लड़का है, सबसे बड़ा लड़का। बचपन से कहते-कहते ही शायद उनके अवचेतन मन ने भी इस बात को इसी रूप में सहज स्वीकार किया। मालती ने भी तो अपने आपको इसी रूप में प्रतिष्ठित कर लिया था घर में। घर का हर काम उसकी मर्जी से, हर समस्या के अंतिम निर्णय का भार उसके ऊपर। सचमुच कितने निर्भर हो गए थे वे उसके ऊपर। शायद ज्यादती ही थी यह, सुधीर ने ठीक ही कहा था।

अपनी बच्चियों की छोटी-से-छोटी इच्छा, हर फरमाइश, किसी को नहीं ठुकराया उन्होंने कभी। खुद उनका बचपन छोटे-छोटे अभावों से भरा हुआ था। अपनी हर कमी उन्होंने बच्चों पर पूरी की। ऑफिस में भी उनका कैरियर जूनियर क्लर्क की हैसियत से शुरू हुआ था। जल्दी-से-जल्दी नौकरी लगने की इच्छा पूरी हुई उनकी पचहत्तर रुपये मासिक के वेतन से। हालांकि तब के पचहत्तर रुपये बहुत हुआ करते थे पर कंधों पर ढेर सारा बोझ। बूढ़ी मां, दो बहनें और दो भाई। आज कितने निश्चित हैं वह सारी जिम्मेदारियां पूरी करके। सोचते हैं, पहले पचहत्तर मिलते थे और आज चौदह-पंद्रह सौ के लगभग लेकिन स्वयं उनके जीवन स्तर में क्या फर्क आया। शायद केवल यह कि ऑफिस में पहले 'शर्मा बाबू' या केवल 'शर्मा' हुआ करते थे और आज मिस्टर शर्मा हैं या 'सर' हैं। ऑफिस के अंदर घुसते हुए अनायास ही गर्दन सीधी होकर तन जाती है। जानते हैं

एडमिनिस्ट्रेशन मुलायमियत और लचीलेपन से नहीं होता है। गर्दन का अकड़ना और गंभीर मुद्रा का होना आवश्यक है। लेकिन घर आने पर फौरन ही जब तक धोती-कुर्ते में नहीं आ जाते, सहज नहीं हो पाते हैं। तब वह केवल मालती के बाबू या बाबूजी या फिर केवल रमन बाबू रह जाते हैं। यही उनका असली और सहज रूप है जिसमें वह खुद को पहचानते हैं। उस दिन ऑफिस में वह क्लर्क सक्सेना कह रहा था अपने साथी से—साला ये मैनेजर का बच्चा बहुत अकड़ फू दिखाता है। मेरे पिताजी बता रहे थे कि शुरू में हमारी ही तरह क्लर्क था। खुद जैसे हर समय झुका कलम घिसता था, चाहता है हम भी अपने बाप की-सी जायदाद समझ कर पिले रहें...। न जाने क्यू उन्हें तनिक भी बुरा न लगा यह सब सुनकर। सोचा, ठीक ही तो कह रहा है। क्या जरूरी है कि जितना काम वह स्वय करते थे या करते रहे हैं दूसरे भी वैसा ही करें? और सच ही तो है, मैनेजर मि० शर्मा के पीछे असल तो रमन बाबू ही हैं, जूनियर क्लर्क, पचहत्तर रुपये मासिक पर, जिसे सक्सेना का बाप जानता है। सोचा कहें, बेटे, दो-चार साल की बात है निभा लो, फिर तो हम होंगे और हमारी ये चारपाई, शायद कुछ-कुछ मेहरोत्रा बाबू के बाप की ही तरह।

लगता है फिर सुमिता की बक-झक हो रही है मां से जरूर। शाम के खाने के पीछे लड़ रही होगी। दरअसल उन्होंने ही कह दिया है उससे कि शाम का खाना वह बनाया करेगी। बेचारी रमा पर भी बहुत काम हो जाता है। जिंदगी भर तो खटती ही रही परिवार में। पैसे से तंग परिवारों में भी क्या दुर्गति होती है बहू की सास-ननदों के बीच। उस समय की रमा की चुप्पी अब बुढ़ापे में टूटी है। कभी-कभी उन्हें लगता है कि जो वह सास-ननदों से अभावों के बीच नहीं निपट पाई, अब कदम-कदम पर अपनी लड़कियों के साथ बक-झक कर पूरा कर रही है। औरों के साथ तो निभ गई, लेकिन ये सुमिता तो किसी की भी नहीं सुनती। लेकिन रमा ही क्यू उलझती है उससे? सीधे-साधे मां के रौब से निर्देश दे, बस। बहस और तकरार की जरूरत क्या है? दोनों ही कम नहीं हैं। सुमिता इधर ही आ रही है शायद, जरूर डाटेंगे इसे।

"ओफ हो! बाबूजी आप भी खूब हैं। शाम हो गई और इतनी सर्दी

मे आपके पास कुछ भी गर्म कपड़ा नही···" और धम-धम करती अन्दर जाकर उनका स्वेटर ले आई। "लाइए, पहना दूं आपको, हाथ तो आपका उठेगा नही···और रुकिए अभी कंबल लाकर देती हू।" और दौड़कर कंबल लाकर ठीक से उढ़ा दिया उन्हे। अभिभूत हो गये वह।

"बाबू जी", झिझकते हुए थोड़ी देर बाद बोली—"हम लोग फिल्म देखने जा रहे हैं। आप अम्मा से कह दीजिए रोटी आकर बना लूगी, सब्जी तो पका दी है।"

"ऊं, फिल्म ?" कुछ अनमनेपन का भाव बना। आंख मूंदे हुए बोले वह, "कौन-सी फिल्म है ?"

"···रोमन हॉली डे—अंग्रेजी फिल्म है,- एक ही दिन के लिए तो आई है।"

"अच्छी बात है, जा। मैं कह दूगा तेरी मा से—", मन-ही-मन मुस्कराए वह। और सुमिता, वह दो मिनट मे, यह ले वह ले, घर मे बाहर।

रमा बकती हुई आई, "मैंने तुम्हारे पास भेजा था उसे, मेरी तो कभी सुनती नही, और तुम हो बस। जब देखो तब घूमना-फिरना···।"

"रमा !" कुछ ऊबे हुए से बोले वह—"जाने दो—कुछ एक साल की ही तो बात है। फिर न जाने कहा जाये, क्या करे, कैसे रहे—" और आख मूंद ली उन्होंने, चुप पड़े रहे फिर।

यूं आंख बंद कर विचारों में डूबते-उतराते हुए बहुत अच्छा लगता है। कहीं किसी की भनक नही, कोई आवाज नहीं, कोई इधर-उधर खींचने वाले तार नही। मानो दूर तक फैले शान्त समुद्र में तैरती बहती एक लहर चारों ओर केवल पानी-ही-पानी जहा तक नजर जाये—बस। थोड़ी देर बाद फिर आख खोल लेते है वह। लेकिन निरर्थक कुछ सोचने, करने को नही उनके पास। शाम का झुटपुटा सामने से दौड़ता आता प्रतीत होता है जो चारो ओर के माहौल को खंडहरों, पेड़ों और फिर कालोनी से होता हुआ उनकी रेलिंग से अन्दर आकर उनको, सबको एक सूत्र मे बाध देता है। उन्हे लगता है कि अब वे भी उस वीराने का, खंडहरों का एक हिस्सा

हो गये हैं और तब उन जैसी ही जड़ता और निष्क्रियता भर आती है उनके शरीर और दिलो-दिमाग में। चुप से स्थिर बिना हिले-डुले पड़े रहते हैं वह।

जिन्दगी भर इतनी व्यस्त, कोलाहलपूर्ण मनःस्थिति में रहे वह कि आज यह शान्त, सहज-सुलभ वातावरण ही मानो असहज हो गया है उनके लिए। उन्होंने कभी नहीं सोचा था कि इतने आराम में हो जायेंगे कभी वह। यह बात कभी ध्यान में नहीं आई कि लड़कियां एक-न-एक दिन, अपने-अपने घर बसा लेंगी, चली जायेंगी यहां से। रमा जरूर कभी-कभी कहती कि अब मालती के लिए लड़का देखो—उसके बाद सुधा है, रूपा है सभी बैठी हैं तैयार होकर—लेकिन उन्होंने कभी कान नहीं दिया और पूर्ववत् अपनी तरह चलते चले गये।

अचानक धक्का लगा उन्हें जब सुधा के बारे में पड़ोस के गुप्ता जी के लड़के ने कहा। पहले तो उन्होंने सोचा कि ईर्ष्यावश कह रहा है। मुहल्ले के सभी लोग उनकी आलोचना करते कि लड़कियों को लड़कियों की तरह नहीं रखते, हद से ज्यादा छूट दे रखी है। एकबारगी हतप्रभ हो गये। कुछ समझ नहीं आया कि क्या करें। रमा से कहा तो वह और परेशान हो गई और रोना-धोना मचा लिया। खैर, बहुत ठंडे दिमाग से सोचकर उन्होंने सुधा को बुलाया और उस लड़के के बारे में पूछा। पता चला उसी के विभाग में रिसर्च-स्कॉलर है और उन लोगों ने शादी करने का निश्चय किया है। वह तो कहो, लड़का इत्तफाक से सजातीय था सो फौरन तीन महीने के अन्दर शादी करके उसे विदा किया। रमा बहुत अव्यवस्थित हो गई इस घटना से और रूपा के लिए आगे सतर्क हो गई। उन्होंने हालांकि बहुत समझाया उसे कि आजकल तो घर-घर में लड़के-लड़कियां अपनी पसन्द से शादी कर रहे हैं। अगर लड़का विजातीय होता या लड़की घर से भाग जाती तो क्या कर लेते वह लोग।

लेकिन कहीं भीतर से खुद भी विचलित हो गये थे वह। उनकी समझ में नहीं आया कि कब कर ऐसा हुआ। उन्होंने तो अपने बच्चों के लिए कोई कमी नहीं छोड़ी फिर···। मालती भी तो रही यूनिवर्सिटी में। पांच-छः साल कम नहीं होते। उन्हें संतोष था कि उनके स्वभाव व विचारों के

अनुरूप ही वह धीर-गंभीर और गरिमामय थी। उन्हें कभी अपने मुंह से अपनी इच्छा-अनिच्छा, पसन्द-नापसन्दगी, कभी जाहिर करने की आवश्यकता नहीं हुई और न ही कभी उसने किसी बात का प्रतिवाद या उनकी इच्छा के विपरीत काम किया। अजीब-सा एक मौन सामजस्य था उन लोगों के बीच। सुधा के विषय में भी उनके सूचना देने पर फौरन वह छुट्टी लेकर आ गई। उसके आने के बाद ही कम-से-कम रमा के जान में जान आई वरना वह तो हाथ-पैर फुला बैठी थी। उसने आकर पहले सुधा से बातें की। दूसरे दिन ही उस लड़के को बुलवाया। घण्टों न जाने क्या बात करते रहे दोनों। और एक हफ्ते बाद लड़के का बाप सुधा के लिए रिश्ता मांगने आ गया।

रमा अब फौरन ऊषा का इन्तजाम करने में जुट गई। साल भर के अन्दर ही लड़का ढूढ निकाला गया। फिर से मालती को बुलाया गया कि आओ लड़का देख लो ऊषा के लिए तो यह भी तय हो जाय। अपनी अहम् भूमिका निभाते हुए वह ये शादी भी सपन्न करा गई।

रमन बाबू को कुछ खलबलाहट-सी महसूस हुई भीतर से। धीरे से करवट बदल ली उन्होंने। सच तो है, दो-दो लड़कियों की शादी की। एक बार भी मालती के लिए कोशिश नहीं की। रमा ने तो अनेक बार कहा भी कि सारी गंगा उल्टी बहा दी हमने। सबसे बड़ी को छोड़ बाकी दो छोटी ब्याह दी। लोग क्या कहते होंगे। कल महरी भी कह रही थी कि—लड़की की कमाई प्यारी लगे है जो ना कर रेथे बड़ी की सादी''

गुस्से से बिफर पड़े थे वह—"निकाल बाहर करो हरामजादी को। अभी मैं कमा खा रहा हूं और इतना है कि मेरे बाद भी तुम निश्चित होकर खाओगी। लोगों से क्या मतलब'''।" और उबलते रहे वे। बाद में गुस्सा ठंडा होने पर दूसरे दिन बहुत हारे से स्वर में बोले—रमा मैं सोचता हू, मालती की शादी के बाद हम क्या अकेले नहीं हो जाएंगे। वो तो लड़का है, मेरा लड़का'''और सोच में डूब गये वह। लगता है कि मालती भी इस बात को समझती थी इसीलिए जो भी प्रस्ताव कभी रमा ने उसके सामने रखे, उसने हमेशा उनके लिए इंकार कर दिया। 'अम्मा सुधा की कर दो, ऊषा की'''मैं अभी नहीं'''।'

उन्हें लगता है सचमुच स्वार्थी हो गये थे वह। मालती की चिट्ठी आने तक भी उन्हें इसका अहसास नही हुआ। उसने लिखा था कि उसके एक मित्र सुधीर वर्मा आ रहे है—बस। थोड़ा-सा ताज्जुब हुआ फिर अच्छा ही लगा। यूं विश्वास भी था कि मालती कभी कोई गलत काम नही कर सकती।

और सुधीर—खासा अच्छा संतुलित, प्रभावशाली व्यक्तित्व। वहां मालती का पड़ोसी और पेशे में इंजीनियर। औपचारिक वार्तालाप के बाद फौरन ही अपने विषय पर आ गया और जो कुछ उसने कहा, वह लगा उनके दिमाग मे हवा की तरह तैर कर रह गया। बैठे जरूर रहे वह मुस्तकिल लेकिन पूरी बात सुनी कब उन्होंने? जाने क्या-क्या कहता रहा वह—मैं और मालती शादी करना चाहते हैं···मालती मना करती है···आप लोगो की वजह से···मालती की जिंदगी···आपकी वजह से···आप कहिए···और न जाने क्या-क्या। उनके दिमाग मे तो केवल जोर-जोर से घन···घन···घण्टे से बजते रहे। दिमाग जो समझ पाया, वह केवल यह कि वह भी चाहती है—केवल आप लोगों की वजह से इंकार करती है। उस वक्त बमुश्किल इतना ही कह पाये—"आप जायें, मैं उससे पूछकर जवाब दूंगा।"

उन्हें लगा था कि वह सुधा की तरह मालती के ऊपर आक्रोश नही प्रकट कर पा रहे हैं। विजातीय दामाद अब कैसे उनके गले से उतरेगा। लेकिन फिर····"आप लोगों को बहुत चाहती है···आप लोगो की वजह से इंकार····" और हमने क्या ज्यादती नहीं की उसके साथ। एक दिन आता जब वह कुंठित—हैगर्ड टाइप हो जाती और तब हो सकता है उनको ही अपना सबसे बड़ा दुश्मन मानती। ना···वह दुश्मन नही बनेंगे उसके और उन्होंने रमा को समझा लिया। मालती को लिख दिया—"सुधीर आया था, तुम्हारे साथ विवाह के प्रस्ताव के साथ···। तुम्हें अगर पसंद हो तो हम हां कह दें। तुम्हारी पसन्द ही हमारी पसंद है···।" जब तक जवाब नही आया, उद्विग्न से रहे वह। शायद मन के किसी कोने में क्षीण-सी आशा दबी थी कि वह इंकार कर देगी—लेकिन ऐसा कुछ नही हुआ। अब सोचते है कि कितनी बचकानी आशा थी उनकी यह।

रिश्ते-बिरादरी वालों का बहुत बहादुरी के साथ उन्होंने सामना किया, बल्कि यह भी कहा कि उन्हें लडका बहुत पसंद था—इसलिए स्वयं उन्होंने ही यह संबंध तय किया। लेकिन भीतर-ही-भीतर लगा कि एकबारगी खोखले से हो गये हैं वह। अब अपना सब कुछ खुद ही सोचना और भोगना होगा। रमा इन बातों को नही समझ पाती है।

मालती की चिट्ठी आज ही आई है। तकिये के नीचे से निकालकर देखी उन्होंने। हाथ बढ़ाकर टेबल लैम्प का बटन दबा दिया। फक् से ढेर सारा प्रकाश गोल दायरा बनाते हुए बिखर गया। मालती ने चिट्ठी में उनके स्वास्थ्य के बारे मे चिंता प्रकट की है। डाक्टर सजेस्ट करते हुए ढेर सारी दवाइयों के नाम हैं व उतनी ही लिस्ट निर्देशों की, और निर्देश केवल उनके ही लिए नहीं, अपनी मां के लिए, सुमिता के लिए भी है! बहुत सारे कामों की याद दिलाई है—अलां कर दीजिए, फलां चीज खाना शुरू कर दीजिए वगैरह-वगैरह और आखिर में शिकायत—आपने मुझे लगता है अपने घर से अलग कर दिया है—आपकी बेटी नही रही क्या मैं? कभी जवाब नही देते पत्रों के और कभी-कभार देते भी है तो लगता है बस फर्ज पूरा कर रहे हों…।

उन्होंने करवट बदल ली। नजरें दूर रेलिंग के पार दौड़ने लगी। प्रकाश बरांडे और रेलिंग तक ही सीमित है। आगे मैदान और बेलीगारद कालेपन में डूबा हुआ है। कुछ दीखता नही अब इस वक्त साफ। रोशनी थोड़ी दूर तक जाती है और फिर भारी अंधेरेपन से टकराकर लगता है, उसमें घुलकर समाप्त हो जाती है। आख मूद लेते हैं वह। मन-ही-मन हिसाब लगाते हैं, चार-पांच साल रिटायरमेंट के हैं। सुमिता की भी शादी कर देंगे वह इन सालों मे। बस फिर—रमा चाहे तो उसके साथ रहे चाहे बेटियों के पास। अब एक बार कटकर जुड़ना नही चाहेंगे वह कहीं पर। चौड़े हरहराते मैदान में एक अकेला ठूंठ-सा अनुभव करते हैं वह खुद को जिसके आसपास और नही उगा हो। एक अजीब अनुभूति है इस अकेलेपन मे भी—एक रिसता हुआ आनन्द-सा है। सोचते हैं उनका क्या है, गंगा किनारे भी एक झोपड़ी बनाकर रह लेंगे वह अकेले—सबसे दूर—अलग!

खुले आकाश के नीचे

कमरे का ताला खोलकर स्विच आन किया तो पता चला कि बल्ब फ्यूज हो गया है। तभी याद आया कि मेज की दराज में एक मोमबत्ती रखी है ढूंढकर जलाई और मद्धिम प्रकाश कमरे में फैल गया। मेरी चार-पांच दिन की अनुपस्थिति साफ जाहिर हो रही थी। चारों ओर धूल-ही-धूल। जरूर इस बीच आंधी आई होगी। गर्मियों की यह आंधी बड़ी बेढब होती है। उस समय तो लगता है सिवाय धूल-धक्कड़ के प्रकृति के पास और कुछ है ही नहीं। इस गन्दे कमरे में तो सोना नामुमकिन बात है, सो मुंह-हाथ बाहर लगे हैंडपम्प पर धोकर मैंने चारपाई बाहर निकाल ली। खाना स्टेशन से आने पर पास के एक होटल में खा लिया था।

साधारणतः बाहर खुले आकाश के नीचे सोना मुझे अच्छा नहीं लगता। खासतौर से इन गर्मी की रातों में जब आसमान बिल्कुल साफ गहरा रंग लिये हो और चारों ओर भर-भर चटख सितारे भरे हों। आसमान के गहरे काले और चमकीले फैलाव को देखकर सौंदर्य-बोध तो बाद की बात है, अपने नामालूम से होने का एहसास ही सबसे पहले होता है जो अपने आप में बहुत दुःखदायी है। इतना बड़ा विश्व और इतनी बड़ी जिन्दगी, फिर भी जैसे कहीं कोई अस्तित्व नहीं···सिर झटक कर करवट बदली मैंने—कोई और काम की बात सोचनी चाहिए। कलकत्ते में हुई मीटिंग के बारे में सोचना ज्यादा जरूरी है। मुझे लगता रहा है कि इस तरह की सभाओं में लफ्फाजी ही ज्यादा होती है। प्रगतिशील राजनीति का साहित्यिक पक्ष जहां बहसें खूबसूरत और हाईक्लास होती हैं···। फिर मैंने स्थानीय ताला बनाने वाले एक कारखाने की प्रस्तावित हड़ताल के

बारे में सोचना शुरू किया जिस पर अब काम होना है। इस कारखाने का मालिक अपनी कौम में अति सम्माननीय सेठ है। हाजी होना उसकी एक और प्रतिष्ठा का कारण है। यूं शहर में और भी कई छोटे-बड़े कारखाने हैं लेकिन इस क्षेत्र में अकेला वह मुसलमान पूंजीपति है। वह कारखाना लगाकर क्योंकि हाजी सेठ अपनी कौम की भी बड़ी खिदमत कर रहा है इसलिए अपने मजदूरों को जो तकरीबन सभी मुसलमान ही हैं, केवल ढाई रुपया रोज मजदूरी देता है जबकि अन्य छोटे-बड़े कारखाने वाले साढ़े तीन या चार तक देते हैं। इससे पहले हाजी सेठ के यहां कभी कोई हड़ताल नहीं हुई। न ही इन मजदूरों ने कभी दूसरे ताला मजदूरों के साथ सहयोग किया। ज़ाहिर है कि इन गरीब मजदूरों को भी हाजी सेठ के साथ कौम की खिदमत करनी है। लेकिन अब की बार एक मजदूर के मर जाने पर सेठ ने उसकी बेवा को कोई मुआवजा या अन्य कोई सहायता देने से इंकार कर दिया तो बावजूद उसकी तालीमों के अनेक मजदूर बागी हो गये जिसके फलस्वरूप अब वहां हड़ताल की योजना प्रस्तावित हो गई है। मुझे डर है कि यह हड़ताल ठीक से चल पायेगी क्योंकि पूरे मामले का आधार केवल कुछ घटनाओं का भावात्मक उछाल भर है…।

चलो, देखा जायेगा—मैं सोचता हूं, अब सोना चाहिए। मैं बहुत थका हुआ था लेकिन अब नींद आ रही है।

सोचते-सोचते अचानक बीना का ख्याल आ गया जो तीन दिन के कलकत्ता प्रवास के दौरान दिखी थी एक दिन। हालांकि छ:-सात साल बहुत होते हैं लेकिन लगता था कोई फर्क नहीं आया है उसमें बल्कि चेहरा कुछ ज्यादा ही चमक रहा था। कुछ पहले से बदन भी भर गया था। कुल मिलाकर अब ज्यादा खूबसूरत लग रही थी वह एक ब्यूटी सैलून के आगे इंतजार करने के ढंग में चहल-कदमी करती हुई। मुझे देखकर फौरन हाथ हिलाया उसने…ऐ ईऽऽऽ…रुको, और लगभग झपटती हुई-सी आगे आकर बोली—कैसे हो—कब आये? उसी पुराने लट्ठमार अन्दाज में।

—यूं ही…कुछ काम से आया हूं। तुम क्या कर रही हो यहां?

—राजेश का इंतजार कर रही हूं—आते होंगे बस। कब तक हो यहां?

—जा रहा हूं कल।

—रुको एकाध दिन। राजेश खुश होंगे तुम्हें देखकर।

मैं क्या भांड हूं किसी को खुश करने के लिए···मैं मन-ही-मन बुदबुदाया।

—और कहो! मुस्कराई वह—तुम्हारा समाजवाद कब आ रहा है? वह मुझे ऊपर से नीचे तक देखती-सी बोली।

—तुम लोगों से बच पाये वह तभी तो आये। और—तुम्हारे पति का कारोबार कैसा फल-फूल रहा है?

वह बड़ी अदा के साथ आंखें घुमाकर बोली—क्यों, मेरा पति क्या तुम्हारा कुछ नहीं है!

—है, जरूर है—दोस्त है, जैसी तुम हो।

मुझे अब झुंझलाहट आ रही थी इन बेवकूफी की बातों से। मैं समझ गया कि अकेले बोर हो रही है सो खामख्वाह बे-सिर पैर की बातें खींच रही है—मैं भी खींच रहा हूं, और अचानक जैसे नींद से जागा हूं मैं अबाउट टर्न होकर बोला—मैं जा रहा हूं, इस वक्त जरा जल्दी में हूं—और फौरन चल दिया। मुझे यह जानकर अच्छा लगा कि इतने वर्षों के बाद बीना से मिलकर मुझे कुछ भी नहीं महसूस हुआ, कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं हुई। यह एक अच्छी बात है—मैंने सोचा। अब कभी-कभी अपने ऊपर बहुत हंसी आती है। खूब बनाया इसने भी मुझे। ऊंचे-ऊंचे ख्यालों और खोखले उसूलों के चक्कर में फंसकर अपना और उसका वर्ग-चरित्र ही भूल गया था।

बीना मेरी क्लासमेट रही थी। अच्छे खाते-पीते घर की लड़की थी। राजेश विज्ञान का विद्यार्थी था। यू राजेश और मेरी दोस्ती खासी कही जा सकती थी हालांकि हम दोनों के बीच कोई समान आधार नहीं था सिवाय इसके कि हम दोनों ही स्टूडेन्ट फैडरेशन में साथ थे और मैं फैडरेशन का सेक्रेटरी था। छात्र जीवन में वामपंथी हो जाना क्योंकि उच्च मध्यम वर्ग में एक फैशन है और बुद्धिजीवी होने का प्रमाण भी सो इसके तहत राजेश

भी बुद्धिजीवी था। बाप उसके पुराने जमींदार थे जिन्होंने वक्त रहते जमींदारी का वैभव बिजनेस में स्थानान्तरित कर दिया। खूब जमकर पैसा आता उनके पास और खूब जमकर ही वह खर्च भी करता। हमें फायदा उससे यह था कि अपने राजनैतिक क्रिया-कलापों के लिए काफी चंदा मिल जाया करता। बस थोड़ा-सा उसे चढ़ाना भर पड़ता था कि उस जैसा विचारक और क्रान्तिकारी मिलना मुश्किल है, बिना उसके इन्कलाब आ ही नहीं सकता और वह अपने को क्रान्तिकारी समझता रहा और हमारे काम पूरे होते रहते। यही वजह थी कि मेरा-उसका साथ था वरना हम दोनों का कहीं कोई मुकाबला नहीं था। मैं धुर-देहाती, एक छोटे से किसान का बेटा जो गांव से पढ़ने आया था शहर में। साथ में लाया था केवल ग्राम्य जीवन की निम्नता और असहायता से उत्पन्न अनुभव के स्तर से जन्मी राजनीति।

मेरे बचपन के ग्राम्य जीवन की स्मृतियां बहुत तकलीफदेह रही हैं। बचपन में ही अनेक दर्द शरीर और मन पर मैंने सहन किये और इन्हीं को साथ लेकर मैं शहर आया। यहां आने पर पता चला कि किसान सभा के सर्वेसर्वा और गणमान्य नेता वह लोग थे जिन्होंने गांव के बारे में शायद किताबें पढ़कर मालूम किया हो। जो वक्त-जरूरत ही वहां दौरे पर जाते और वहां गांव-प्रधान की ही मेहमानदारी में अपने काम करते।

शहर आने के बाद जब तक दल में मैं और मेरा अस्तित्व नगण्य रहा, इन लोगों को मुझसे कोई परेशानी नहीं थी बल्कि कुछ अर्थों में दया और उदासीनता का भाव ही मेरे प्रति था, लेकिन जिस दिन उन्हें पता चला कि मेरे निर्णय और कार्य-कलाप प्रभावशाली हैं और मैं आगे की पंक्ति में आ रहा हूं मेरे प्रति उनकी तिरस्कार-भावना बहुत सहज हो गई। अब बजाय अपनी क्रिया-शक्ति बढ़ाने के उनके काम मुझे हटाने और नीचा दिखाने के लिए होने लगे। अच्छे-भले सम्पन्न घरों के लड़के मुझ गंवार के नेतृत्व में काम करें, यह उनके अभिजात्य और सम्मान के खिलाफ था। यूं भी राजनीति में चाहे वह छात्र वर्ग की हो या किसान सभा की, शहर संगठन के स्तर पर हो या जिला और प्रदेश के स्तर पर, नेतृत्व पर यही सब बड़े घरों के विशिष्ट जन छाए हुए थे। मुझे एकबारगी यह सोचने पर विवश

हो जाना पड़ा कि क्या बात है कि हर फ्रन्ट पर सर्वहारा वर्ग की राजनीति में सर्वहारा वर्ग का नेता उभर कर ऊपर क्यों नहीं आ पाता। मैंने यह भी देखा कि साधारण कार्यकर्ता बावजूद अपनी जागरूकता और प्रतिबद्धता के, उच्च वर्ग तथा मध्यम वर्ग के नेताओं से अभिभूत है। इन नेताओं के मामूली कार्य-कलाप भी इनके लिए गैर मामूली होते। यू भी साधारण आदमी की आदत होती है कि यह हर सम्पन्न, बड़े आदमी से प्रभावित हो जाया करता है बिना वज़ह, चाहे उसका उससे कोई मतलब हो या नहीं। वह अपना अधिकार केवल पीछे की पंक्ति में रहना ही समझता है और इसलिए ये मध्यवर्गीय नेता सर्वहारा वर्ग की राजनीति के आधार स्तम्भ बने बैठे थे।

अत: ऐसी कड़ी धरती पर आरम्भ मे पैर जमाने में बहुत परेशानी हुई। उन दिनों अक्सर ऐसा लगता कि मुझे यह जीवन छोड़कर भागना पड़ेगा, शायद वही गाव में वापिस जहा से आया था। वैसे भी घरवाले नहीं चाहते थे कि शहर जाऊं और आगे पढ़ूं। इण्टर पास कर लेना बहुत था। वही घर की खेती सभालूं या गाव के प्राइमरी स्कूल मे अध्यापकी कर लूं। सो घर वालो से झगड़ कर एकदम खाली हाथ ही आया था शहर में। शुरु-शुरू में रहने-खाने का भी कोई ठिकाना न था। धीरे-धीरे कभी पार्ट-टाइम नौकरी और कभी छात्रवृत्ति, इसके सहारे गाड़ी चली। ऐसी विकट परिस्थितियो में जब जीवन का ही आधार न जम रहा हो बार-बार संकल्पों पर, महत्वपूर्ण बन कुछ कर सकने के इरादो पर प्रहार मुझे अत्यंत विवश कर देते सब छोडकर भाग जाने के लिए। हमारे दल के नेता लोग जब व्यवहारिक अनुभवो और राजनीतिक अनुमानों के स्तर पर स्वय को मुझसे कम पाते तो फिर उनकी नजरें मेरे कपडों पर या कपड़े पहनने के ढंग पर, मेरे उच्चारण या मेरे एटीकेट्स पर होती। मीटिंग वगैरा के दौरान जब बहस आदि में यह लोग मुझसे न जीत पाते तो फौरन मेरे उपहास करने का मसाला ढूढ़ लेते और बस, एक ठहाके के साथ सारी बात खतम और विषय की गभीरता तितर-बितर।

ऐसे समय में वीना शायद मेरी गतिविधियों का जायजा लेने के लिए ही मेरी ओर झुकी। उस कौतूहल में जरूर मैं उसे कुछ हीरो नजर आया

होऊंगा। उस वक्त उसका झुकाव और उसके द्वारा अपनी तारीफें सुनकर अब लगता है मैं अपना सतुलन खो बैठा था। वह उस समय रिसर्च के लिए एडमीशन ले चुकी थी। यू मुझे तीन-चार साल से जानती थी लेकिन झुकाव उसका अब ही हुआ था। जो भी हो, मेरी वजह से या यूं कहें कि मेरी गति-विधियों में दिलचस्पी दिखाने के लिए उसने छात्र राजनीति के कामों में भाग लेना तत्परता से शुरु कर दिया। मैं भी उस दायरे में जहां और लोगों में नीचा पड़ता था, अब अपने को प्रतिष्ठित और बराबर का महसूस करने लगा। यूं भी बगल में लड़की हो तो अच्छे भलों के दिमाग खराब हो जाते हैं। फिर मैं तो जब तक अपने साथ के लड़कों की गर्ल फ्रैंड्स को आकाश-कुसुम समझता था। अतः मेरे लिए यह बहुत बड़ी उपलब्धि थी जो मुझको राजेश और दूसरे ऐसे ही लोगों के काफी हद तक समकक्ष लाती थी तो क्यों न गर्वित होता मैं बीना के साथ अपने सबंधों पर। अब मुझे अपनी बौद्धिकता के अलावा अपने तथा अपने भविष्य के ऊपर भी जबरदस्त आत्म-विश्वास हो चला था जिसकी वजह से अब कहीं पर भी पलायनवादी भावना मेरे अंदर शेष न रही। अच्छी और खूबसूरत लड़कियों से अब मैं सहज-स्वाभाविक रूप से पेश आता और साथ ही मेरा रहन-सहन, पहनावा, बातचीत और लहजा सब तेजी से आधुनिक होते चले जा रहे थे।

बीना थी भी खासी स्मार्ट लड़की जो दूसरे लड़कों के लिए सहज ही ईर्ष्या का विषय हो सकती थी। मुझे तब अपने गांव का माहौल याद आता।

मां की याद तो बहुत धुंधली रही मेरे दिमाग में, घर में भाभी ही थी, मोटे गाढ़े की किनारेदार धोती पहने जो हमेशा मटमैली, बदरंग-सी रहती और कभी-कभी हरे या गुलाबी रंग में रंग ली जाती। रूखे चेहरे पर रूखे से बाल, उपलों के धुएं में उलझी। सारे वातावरण में गू-गोबर की गंध जो तब बहुत सहज और परिचित थी। मेरा भी भविष्य उस परिवेश से वैसी ही किसी उलझे रूखे बालों वाली कमर तक घूंघट, पैरों में चांदी के लच्छे, हाथों में काले मैल भरे चांदी के कड़े, बात-बात में नाक सुड़कने तथा हाथ नचा-नचाकर पड़ोसिन या जेठानी से लड़ने वाली के साथ बंधा था जो अब मेरी बरदाश्त के बाहर था। शहर ने सचमुच मेरी आदतें खराब कर दी

थी और घरवालों के लाख बुलाने के बावजूद मैं नहीं जाता। मुझे अंदेशा था कि भाभी जैसी ही कोई लड़की उन्होंने मेरे लिए तलाश कर रखी है। मेरे पास से मौका जा रहा था अपना वर्ग बदलने के लिए, उस निम्न दबे-घुटे परिवेश को छोड़ प्रतिष्ठित एवं सुसंस्कृत वातावरण को पाने के लिए और मैं उस मौके को खोना नहीं चाहता था।

आज जब सोचता हूं तो सब बचकाना लगता है। मैं वर्ग बदल सकता था पर बीना नहीं बदल सकती थी मेरे साथ, राजेश भी नहीं बदल सकता था। बीना ने बदल लिया, राजेश से शादी कर ली और सेठानी हो गई, क्योंकि बीना और राजेश में थोड़ा ही अंतर था लेकिन बीना और मेरे बीच की वह दूरी बहुत अधिक थी। मेरा यह भ्रम भी टूट गया कि बीना मेरी बौद्धिकता से अत्यधिक प्रभावित है। उसका शोध-कार्य बहुत जल्दी पूरा हो गया जिसके लिए मुझे बहुत-बहुत थैंक्यू मिला। जिस दिन उसकी पी-एच०डी० स्वीकृति की रिपोर्ट आयी उस ने मेरे होंठों को चूम लिया पहली बार भावावेश में शायद कम कृतज्ञता ज्ञापन के लिए अधिक। लेकिन तब तक मेरे मुंह का जायका खराब हो चुका था सो मुंह दूसरी ओर कर चुपचाप थूक दिया मैंने वह चुंबन। कुछ कहना तो शायद फिर अपने छोटेपन को ही दिखाना होता, आखिर था न मैं कमजात जैसा अक्सर राजेश हंसी-हंसी में कहा करता। ऐसे वक्तों पर हालांकि मैं भी हंस जाया करता और सोचता कि आखिर क्या बात है मुझ में और राजेश सरीखे लोगों में। मैं बहुत अच्छी, सलीके से बातें कर सकता था, मैं समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक सोच सकता निर्णयात्मक ढंग से, मैं बहुत अच्छा विद्यार्थी भी था जो बहुत दूसरे नहीं थे। उन लोगों की बहुत छोटी-छोटी बातों को भी चुपचाप गौर किया करता था। मसलन एक छोटी-सी बात कि हॉस्टल में ही कितनी दफा ऐसा होता कि वे लोग लैटरीन से आते बिना जंजीर खींचे। मैं तो कभी नहीं भूला जंजीर खींचना, अगर कभी भूल गया होता तो वह यही कहते कि साले को आदत नहीं फ्लश इस्तेमाल करने की। अबे—यह गांव का खेत नहीं जिसे सार्वजनिक शौचालय बना लिया हो। हां, उन्हें यह बहुत

अच्छा माना कि टेबिल पर छुरी-कांटे कैसे इस्तेमाल करें, किन अवसरों पर मुस्कराते हुए झुककर कौन से निश्चित वाक्य बोलें, कब केवल मुस्कराकर और कब दांत दिखाकर हंसें।

आज यह बहुत बेमानी-सा लगता है। तुम कुछ किसी का बना सकते हो या बिगाड़ सकते हो तो सब तुम्हें पूछेंगे वरना भले तुम अच्छी अंग्रेजी बोलो, कितना ही तुम टेबुल मैनर्स और एटीकेट्स के धुरंधर विद्वान बनो तुम कुछ भी नहीं हो।

सूर्यभानसिंह को देखो। प्रदेश के अपने मुख्य मन्त्रित्वकाल में बहुत धाकड़ नेता रहे। दस साल प्रदेश पर निर्द्वंद्व राज्य किया। जनता से मिलने का समय उनका आठ से दस बजे सवेरे हुआ करता। उस समय पहले वे लगभग घुटनों तक का एक जांघिया पहने तेल मालिश करवाते और फिर ऊपर से एक बंडी पहन लेते। इस दौरान ही लोगों से मिलते और बातचीत करते रहते। बात-बात में मां-बहन की गाली देना उनकी आदत थी। सारे बड़े-बड़े अफसर और तहजीब और समाज से ठेकेदार बड़े प्रेम से उनके वाक्य-प्रसाद ग्रहण करते। जो जितना ही ज्यादा पाता उतना ही अधिक धन्य होता।

मिस मेहता जो अपने सोफिस्टिकेशन के लिए प्रसिद्ध थी, एक बार मुख्यमंत्री के पास विदेश जाने के लिए फैलोशिप की सिफारिश के लिए गयी। लौटने पर बहुत गर्व से उन्होंने बताया कि इत्तिफाक से वह उस समय पहुंची जब मुख्यमंत्री जी जांघिया पहने मालिश करवा रहे थे। अतः इत्मीनान से उन्होंने लगभग दस मिनट उनसे बातें की। यह वही मिस मेहता थीं जिन्होंने अपने मंगेतर से इसलिए शादी करने से इंकार कर दिया कि वह घर में पायजामा-बनियान पहनने का आदी था।

अपने कैफी साहब बहुत बड़े मजदूर नेता हैं। घर से बहुत संपन्न, मा-बाप दोनों की लाखों की जायदाद के मालिक। लंदन पलट होना उनकी एक और बड़ी योग्यता है। मजदूरों के बीच काम करते हैं। मेरा भी कार्य-क्षेत्र वही है। अनुभव और कार्य उनसे ज्यादा नहीं तो कम भी नहीं। स्वयं कैफी साहब भी बिना मेरी सलाह के कोई निर्णय नहीं लेते, लेकिन आम आदमी पहले कैफी साहब के पास ही जायेगा, क्योंकि वह बहुत बड़े आदमी

हैं इसलिए नेता भी वही बड़े हैं। जल्दी में अगर कभी मैं घिसे कालर की कमीज पहनता हू तो इसलिए कि···घर देहाती हूं। मैं क्या जानूं कपड़े पहनना। कैफी साहब अगर फटी कमीज पहन कर चल देते हैं तो यह उनकी सादगी है। मैं अगर गांव जाकर अपने जन्म प्रदत्त परिवेश द्वारा थोपे भविष्य से इन्कार करता हू तो माला, अपनी औकात भूल जाता है। कैफी साहब ने लंदन मे किसी हिन्दुस्तानी व्यापारी की लड़की से जो वहां पढ़ने आई थी और उनसे मिलने के बाद एकबारगी इंकलाबी हो गई, शादी कर ली, तो वह उनकी समझदारी घोषित हुई क्योंकि उन्होंने अपनी क्रांतिकारिता के मार्ग पर रोडा बनने वाली पहली बीवी को तलाक देकर सच्ची क्रांति की।

पहले बीना को लेकर मैं अक्सर परेशान हो जाया करता था, लेकिन अब लगता है कि बीना एक नही, हजारों है, हर क्षेत्र में है। अभी बहुत संघर्ष करना है और हर स्तर पर करना है—व्यक्तिगत भी और जनता के साथ भी।

जो उपलब्धि कैफी साहब को, राजेश को और बीना को बहुत आसानी से हो जाती है मुझे उसके लिए ही पत्थर तोड़ने पड़ते है तभी अपने आपको स्थापित कर पाता हू। अब सोचता हू कि व्यक्तिगतस्तर पर लड़ाई ज्यादा नही करनी चाहिए। जिंदगी अपने आप में कितनी छोटी है। ये दूर अनंत तक फैला आकाश हर क्षण जिंदगी के हर लमहे को सार्थक बनाने का अहसास दिलाता है। अभी तो बहुत पड़ा है करने के लिए, कैसे हो पाएगा इतना सब ?समय तो जैसे दौडता ही चला जाता है।

बहुत मुश्किल लगता है कभी-कभी इस भागते समय को पकड़ना और सार्थक बना सहेज रखना। अच्छा ही हुआ जो बीना से मिलकर कुछ भी महसूस न हुआ, न अच्छा न बुरा। यह एक अच्छा लक्षण है वरना सारी जिंदगी असंख्य बीनाओं और राजेशों से ही निपटने में खत्म हो जाएगी। इस दौड़-भाग, बेतरतीब, धूल भरी जिंदगी में अभी भी बहुत कुछ उपलब्ध है, शेष आगे हो जाएगा। तभी मैं सो सकता हूं आराम और इत्मीनान के साथ इस विशाल हरहराते, काले-चमकीले दूर तक फैले खुले आकाश के नीचे।

जमी हुई बर्फ

प्यारी दीदी !

तुम भी क्या कहोगी कि काहिली की हद है, पत्र का जवाब लगभग डेढ़ साल बाद दिया जा रहा है। सच कहती हो काहिली ही तो है यह, लेकिन तन की शायद कम, दिलो-दिमाग की ज्यादा है। सच, न जाने क्या होता जा रहा है मुझे। एक अजीब सन्नाटा चारों ओर छाता रहा है जो मेरे इस कदर भीतर घुस गया है कि अन्दर की हर चीज सुन्न हो गई है। कहीं कोई अहसास नाम की चीज शायद नहीं रह गई है। एक बर्फ जैसी जड़ता भर गई है अन्दर जो इस तरह कठोर हो गई है कि लगता है अब कोई गर्मी इसे पिघला नहीं सकेगी—और दीदी यही बर्फ है जिसने मेरा भीतर-बाहर सब मृतप्राय: कर दिया है। लगता है यह बेहोशी की-सी अवस्था अब कभी खत्म नहीं होगी। हाथ-पैर चलते रहेंगे, रोज के सभी काम होते रहेंगे, खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना-जागना। बिशू की देख-भाल भी, आनन्द का साथ भी। केवल दिलो-दिमाग ही गहरी नींद में रहेंगे, अवश। आनन्द कहते हैं कभी-कभी, तुम क्या विशेष करती हो, निन्यानवें फीसदी औरतें यही करती हैं, घर-बार, पति, बच्चे—मेरा ख्याल है कि पूरी निन्यानवें अगर न सही, तो कम-से-कम पचानवें फीसदी औरतें अवश्य इसी बेहोशी की हालत में जिन्दगी गुजारती होंगी। तो क्या औरतों के हिस्से में जिन्दगी जीना नहीं आता? केवल घसीटना और बिताना भर होता है? पता नहीं दीदी, तुम ज्यादा पढ़ी-लिखी हो, तुम्हारा क्या

ख्याल है ?

विशू बहुत शैतान हो गया है। सारा दिन चीजों की उठा-पटक करता रहता है। कभी-कभी तो विशू पर भी कोफ्त होने लगती है कि क्या एक और बवाल लगा बैठी अपने पीछे। कम-से-कम यह न होता तो अलग रहकर सर्विस तो कर ही सकती थी। अपने हाथ-पैरों पर खड़े होकर अपना दाना-पानी मुंह में जाए तो बड़ा संतोष रहता है। लेकिन फिर कभी सोचती हूं कि शायद विशू ही वह आग है जो चिंगारी के रूप में अभी दबी है मेरी अतल गहराइयों में, वरना इसके बिना तो शायद मैं एक बर्फ की प्रतिमा ही बन जाती, जीवन से अशेष। शायद इस समय मेरी जिन्दगी का नाम विशू ही है।

दीदी, अब तो तुम भी सारे पिछले पृष्ठों को—बिना किसी उत्तेजना और पूर्वाग्रहों के—धैर्य के साथ एक बार फिर समीक्षा कर सकती हो। सच कहो, अगर आरम्भ में किसी को जीवन साथी चुनने के इरादे से मैं उसके निकट आ गई, फिर एक बिन्दु पर पाया कि यथार्थ के धरातल पर उतरने के बाद वह किसी भी प्रकार संगतिपूर्ण न होगा यानी उसका बिना मुखौटे का स्वभाव मेरे स्वभाव व संस्कारों के बिल्कुल विपरीत है तो क्या मुझे यह अधिकार न था कि मैं उस बिन्दु पर वास्तविकता को समझने के बाद पीछे हट जाती ताकि जिन्दगी भर की विसंगतियों से बचा जा सकता ? सच कहना, क्या जानते-बूझते उस प्रतिकूल व्यक्ति को स्वीकारना आवश्यक था क्योंकि हमारे बीच काफी निकटता हो गई थी। तुम और अम्मा खुद भी कहा करते थे कि देख-सुनकर अपनी मर्जी से आदमी पसन्द करना चाहिए। क्या घंटे-दो घंटे सामने बैठकर औपचारिक बातों से देखना-सुनना हो जाता है और इस देखने-सुनने में जो पहला आदमी पल्ले पड़ा उससे विवाह करना जरूरी है ? इसमें तो यह ज्यादा अच्छा है कि विवाह तक लड़का और लड़की एक-दूसरे के लिए नितांत अपरिचित रहें और फिर भाग्य का विधान समझ जो मिल गया उसे ग्रहण करें और आगे हरि-इच्छा को निबाहते हुए एडजस्ट करें। खामख्वाह दोहरेपन की क्या जरूरत है। दरअसल हम बीच के लोग न तो उच्च वर्ग की भांति इन सम्बन्धों को अति सहज रूप में लेते हुए बोल्ड हो पाते हैं जो ऐसी मान्य-

ों को जूते की नोंक पर लें और न ही पढ़-लिख लेने के बाद बैकवर्ड
ाना बरदाश्त कर पाते। नतीजे में क्या मिलता है? वही जड़ता,
ा दिलोदिमाग और घिसटते जिन्दगी के कदम।

आनन्द का जब मैंने तुम लोगों से परिचय कराया था उस समय तक
केवल मेरा मित्र ही था, कहीं कोई विशेष भावना न थी। तुम लोगों ने
की बहुत तारीफ की थी कितना सज्जन, स्मार्ट और तमीजदार है।
नी अच्छी अंग्रेजी बोलता है। लगता भी नहीं कि दुकान वाला है आदि-
दि। तुम लोगों से उसकी तारीफ सुनने के बाद मुझे लगा, क्या वास्तव
ी यह इतना काबिल है? मुझे एक बार अपने चुनाव पर बहुत गर्व
ा कि वाह! पहली बार में इतना अच्छा आदमी हाथ लगा। फिर एक
: जब आनन्द ने तुम लोगों से रजामन्दी चाही कि मैं उसके साथ फिल्म
े जाऊं तो अम्मा ने एक बार मना भी किया लेकिन तुम क्योंकि किताबें
पढ़कर ज्यादा ही उदार और प्रगतिशील थी, रजामन्दी दिलवा दी।
' में वह रोज ही स्कूटर लेकर छुट्टी में आने लगा मेरे कालेज। सब मैंने
बार उसे मना किया लेकिन उसने हमेशा यह कह मेरा मुंह बन्द कर
ा कि जब तुम्हारी दीदी और मां को कोई एतराज नहीं तो फिर तुम्हें
'? क्या तुम मुझे पसन्द नहीं करतीं…मैं पता नहीं उसे पसंद करती
कि नहीं—कह-कहकर सबने जरूर मेरे दिल में यह अहसास पैदा कर
ा था कि मैं उसे चाहती हूं, प्रेम करती हूं। जब उसने विवाह का
ाव मेरे सामने रखा उस समय भी मैंने निर्णय तुम लोगों पर छोड़
ा। मुझे तब भी अपने ऊपर भरोसा न था कि वास्तव में आनन्द मेरे
; पूरी जिन्दगी भर उपयुक्त रहेगा या नहीं। मैं चाहती थी कि खूब
ा-समझकर तुम लोग निर्णय लो और अगर इस समय भी तुम लोग
ा कर देते तो मैं खुशी-खुशी दूसरे दिन अपने सम्बन्ध तोड़ लेती तुम
ों के बहाने से लेकिन तुम लोगों ने तो तीसरे ही दिन निर्णय ले लिया।
ारी और मां की सलाह हुई कि अगर आनन्द मुझे पसन्द है तो तुम
ों को भी पसन्द है और कि अब जमाना आगे बढ़ चुका है। पुराने
ने की तरह तुम लोग हमारे बीच में रोड़ा नहीं बनोगे और कि वह
प है, स्मार्ट है, सम्पन्न घर का है। क्या हुआ अगर अपनी जाति का

नही है। क्या जरूरी है कि अपनी जाति में इतना अच्छा लड़का मिल जाय···

तुम लोगों से दरअसल रजामन्दी मिलने के बाद अब वह अपने व्यवहार मे थोड़ा लापरवाह हो गया था। अब उसे पहले जैसी सतर्कता की आवश्यकता नही थी। अतः अब उसका असली स्वभाव कभी-कभी दीख जाता। तुम्हें याद होगा कि पहले वह किस कदर मेरी पेंटिंग्स की तारीफें किया करता। तब वह कहता था कि तुम चाहो तो शादी के बाद बम्बई चली जाना। जे० जे० स्कूल आफ आर्ट्स मे—मैं चाहता हूं तुम एक बड़ी कलाकार बनो। मैं खुशी से फूली न समाती कि किस कदर विपरीत परिवेश से आने वाला आनन्द कितना उदार और कला-प्रेमी है लेकिन जब मैंने अपने चित्रों की प्रदर्शनी सूचना केन्द्र—भवन में आयोजित की उस वक्त मुझे महसूस हुआ कि उसे अन्दर से कोई खास खुशी नही थी। मैंने उससे कहा भी लेकिन उसने बात बदल दी और खुद मेरे साथ लगा रहा वह, हर क्षण कि कहीं मैं दूसरो के साथ ज्यादा मेल-जोल न करूं। कितनी हास्यास्पद बात थी कि मेरे चित्रों की प्रदर्शनी का आयोजन हो और मैं ही घूंघट निकाले बैठी रहूं। तुमसे मैंने चलते-फिरते इस बात का जिक्र किया तो तुमने कहा कि कितना कोआपरेटिव है, सारा वक्त तुम्हारे साथ लगा रहा बेचारा। मैंने सोचा कि शायद फिर एक बार मै ही गलत हूं। दीदी, आदमी कितना ही योग्य और अकलमन्द क्यों न हो, आत्मविश्वास की कमी और संकल्पहीनता उसके व्यक्तित्व के लिए ऐसे तीक्ष्ण कैंसर हैं जो आदमी को बहुत जल्दी खोखला कर देते है और महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति को तो इन अवगुणों के साथ जिन्दा रहने का कोई हक ही नही है।

कभी-कभी सोचती हूं तो लगता है कि आनद का भी क्या दोष? उसका समूचा परिवेश जन्म से अब तक यही रहा। जिसके खानदान में पिछली तीन पीढियो से दुकानदारी का धधा चला आ रहा हो उसकी सपूर्ण मनोवृत्ति का व्यापारिक हो जाना स्वाभाविक ही है। आनद को मालूम था कि हम लोग शादी मे कोई भारी दहेज और नकद नही दे सकेंगे फिर भी उसने सोचा कि कुछ थोडा बहुत तो होगा ही, हालाकि तुमने और मा ने पहले ही इस विषय मे स्पष्ट कह दिया था। इसके अलावा जो

इनके लिए जो कुछ थोड़ा-बहुत था वह हम लोगों के लिए बहुत अधिक था। उस वक्त आनंद ने अवश्य बहुत वीरता दिखाई कि अपने घर के भीषण विरोध के बावजूद भी मुझे ब्याह कर ले गया लेकिन अब लगता है कि उसकी वह वीरता परिस्थितिवश एक उत्तेजना से उपजी थी जो ढलते उफान के साथ स्वतः समाप्त हो गई। अब मुझे उसकी और उसके घर वालों की इज्जत के लिए अन्य जेठानियों की भांति ही सुशील बहू बनकर रहना पड़ता है। सवेरे से शाम तक हाथ भर लम्बा घूंघट, अपनी मर्जी से कुछ करने, जोर से बोलने तक ही मनाही। सास-ससुर, चार जेठ और चार जेठानियों के पैर पूजने से दिन शुरू होता है और रात सोने से पहले फिर यही प्रोग्राम दोहराया जाता है। एक दिन बहुत साहस करके अपने रंग, ब्रुश वगैरह साफ कर सहेज रही थी इतने में लालाजी (पूज्य ससुर जी) दुकान को जाते हुए कमरे में झांक गये और बोले—बहू ये सब यहां नहीं चलेगा। म्हारे घर में बहुएं सलीके से रहे, इज्जत के साथ। मैं गुस्से से तड़प गई। इसमें उनकी क्या इज्जत जा रही है। जब दस लोगों के सामने मेरी पढ़ाई-लिखाई की तारीफें करते हैं, तब उनकी इज्जत बढ़ाना होता है, और खुद मेरा कुछ करना खानदान की इज्जत गवाना। फिर सोचती हूं कि यूं ही इन सबको गुस्सा है कि बेटे ने चालीस हजार नकद और मोटर ठुकराकर इनका खासा-बड़ा नुकसान कराया है, सो उसकी क्षतिपूर्ति तो मुझे ही करनी होगी। रही आनंद की बात, सो उनका तो अहम् सन्तुष्ट हुआ कि अपनी जाहिल भाभियों के बीच उन्होंने पढ़ी-लिखी आधुनिका से शादी की, क्योंकि घर में केवल आनंद ही उच्च-शिक्षा प्राप्त है।

दीदी, तुम्हें याद होगा कि एक बार मैं छुट्टियों में तुम्हारे पास आई थी, अपनी आंखों का इलाज करवाने। दरअसल इलाज तो केवल बहाना था। मैं वहां अपनी दोस्त विभा के भाई से जो ट्रेनिंग के बाद नया ए० डी० एम० होकर वहां आया था, उससे मिलना चाहती थी, जिससे मेरी सिर्फ हलो-हलो वाली जान-पहचान-भर थी। बाद में विभा ने मुझे बताया कि वह मुझे बहुत पसंद करता था, लेकिन कभी उसके स्पष्ट न कहने की वजह से मैं समझ न पाई, इसलिए कभी उसकी ओर मैंने ज्यादा ध्यान भी

नही दिया। आनंद को जब मैंने स्पष्ट रूप से जान पाया और ये कि उसके घरेलू वातावरण मे मेरी आत्म-हत्या के साधन जुटेंगे, मैं बहुत परेशान हो गई थी। स्थिति यहां तक पहुंच चुकी थी कि वह अपने घरवालो से शादी की तारीख निश्चित करने पर जोर दे रहा था और मैं चाहती थी कि फौरन कोई अन्य रास्ता निकल आये इस पूरे चक्रव्यूह से भाग निकलने के लिए जो दिन पर दिन कसता जा रहा था। इस बीच आनन्द ये स्पष्ट कर चुका था कि उसने इरादा बदल दिया है—फिलहाल उसका कोई नौकरी करने का विचार नही। वह कोई बिजनेस आरंभ करने की कोशिश करेगा और मुझे रहना उसके परिवार के साथ ही होगा। मुझे अब ये भी मालूम हो चुका था कि वह आरंभ से ही बहुत झूठ बोलता रहा है उसके पास अपना कुछ नही। कभी घर से, कभी बाप से या कभी दोस्तों से सामान लाता था वह शान दिखाने के लिए। सबसे ज्यादा मैं तब बिदकी जब यू ही एक दफा वह रौ मे कह गया कि शुरू से ही उसकी महत्वाकांक्षा थी कि वह अपनी मर्जी से लव-मैरिज करे किसी आधुनिका के साथ, तो मुझे उसकी अक्ल और बचकानी मान्यताओं पर तरस तो आया, पर अपने भविष्य के प्रति मैं अत्यंत सशंकित हो उठी। इसका अर्थ कि उसकी इस उदारता और प्रगतिशीलता के पीछे और कुछ नही, महज एक फैशन है। इसे यू कहें कि इसका मेरे प्रति कोई उत्कट प्रेम-भाव भी नही जिसके तहत यह मुझसे शादी कर क्रांति कर रहा था। मुझे लगा अब भी समय है, कुछ कर सकू तो—यहा से भाग सकूं तो।

तुम विभा और उसके घर के वातावरण को खूब जानती हो, कितना उन्मुक्त और सहज है। विभा ने आनंद के साथ शादी की बातचीत सुनकर मुझसे कहा था कि मैंने ही कभी उस मौन आग्रह का प्रत्युत्तर नही दिया उसके भाई को, वरना वह तो अब तक मेरे लिए आशान्वित था लेकिन स्वभाव से थोड़ा संकोची और रिजर्व होने के कारण वह कभी मुखर नही हो पाया। लेकिन तुम···तुम कैसी बिफर पड़ी थी मुझ पर जब वह मुझे लेने आया था और उसके दूसरे ही दिन तुमने मुझे रवाना कर दिया, सामान सहित घर को वापिस मा के पास इस धमकी के साथ कि तुम यह सब आनंद को बता दोगी और कि मैं बहुत बेशर्म हूं, बाजारू हूं और न जाने

क्या-क्या हूं कि अच्छे-भले लड़के के साथ शादी तय हो जाने के बाद भी छिनालपना करती हूं।

दीदी, आज तुम भी और मैं भी उस मुकाम पर है जहां हम अनेक पूर्वाग्रहों से मुक्त बहुत-सी चीजों पर खुले दिल से विचार कर सकते है। अब बचपन की ग्रन्थियां अपनी वास्तविक शक्ल मे हमारे सामने है कि वह कितनी अमल थी और कितनी छायामात्र। आज मैं यह अवश्य स्वीकार करूंगी कि तुम्हारे और हमारे बीच की मौन, अचेतन की प्रतिद्वन्द्विता ही थी वह जिसकी वजह से मैं जल्दी-से-जल्दी और बहुत अच्छा घर-पति किसी भी तरह से हथियाना चाहती थी, एक बार जिन्दगी के इम्तिहान में तुम्हे नीचा दिखाने के लिए।

तुम बचपन से ही इस बात को महसूस करती थी कि तुम देखने-सुनने में बहुत मामूली हो और सौभाग्य कहूं या दुर्भाग्य, मेरी गिनती खासे खूबसूरतों में थी। बचपन मे अगर हमारे बीच तुलना होती तो तुम बहुत फील करती थी। नतीजा यह हुआ कि जहां तुम एक ओर बहुत झेंपू और आपसी व्यवहार मे बहुत दब्बू हो गई तुमने अपने को दूसरी ओर केन्द्रित किया और तुम पढ़ने-लिखने मे अव्वल रही, हमेशा फर्स्ट। मेरा पढ़ने-लिखने में मन न लगता। कभी प्रोमोटेड तो कभी फेल—यूं गाड़ी चली तो घर मे मां बहुत चिल्लाती मेरे ऊपर। बिना बाप के मां परवरिश कर रही थी किसी तरह हमारी, सो उसका नाराज होना स्वाभाविक ही था। वह खूबसूरती जो गर्व का विषय थी, अब मेरे लिए हर वक्त ताड़ना बन गई कि हर वक्त शान-फैशन में मन है, काम-काज, पढ़ाई-लिखाई नदारद। हर वक्त तुम्हारा मेरा मुकाबला कि मैं जिन्दगी मे कुछ भी नहीं कर सकूंगी—कि ऐसी आदतों से मेरी स्थिति भिखारी से भी बदतर होगी। तुम्हारी तारीफें, तुम्हारी लियाकत, तुम्हारा दिमाग···सुनते-सुनते मेरे कान पक गये। मैंने तय कर लिया कि क्लास के इम्तिहान मे तुम कितना ही फर्स्ट आओ, जिन्दगी के इम्तिहान मे, मैं तुमसे आगे रहूंगी। मैं जानती थी कि तुम बड़ी हो, पढ़ने मे तेज, ज्यादा-से-ज्यादा जो सम्भव हो, तुम पढ़ाई करोगी। फिर जाहिर है तुम्हें नौकरी भी करनी पड़ेगी। इसके अलावा क्योंकि तुम लोगों से मिलने-जुलने मे कतराती थी और अपनी शक्ल-सूरत का खासा तुम्हें

काम्प्लेक्स भी था, मैंने सोचा मैं क्यों न तुम्हारी इन कमजोरियों का, अपने उन्मुक्त और प्रभावशाली व्यक्तित्व का फायदा उठाऊं। दूसरी बात मुझे इस बात का भी डर था कि हम लोगों के पास लेने-देने को बहुत कुछ तो था नहीं, सो कहीं ऐसा न हो कि मेरी शादी ही न हो, सो बचकानी जल्दीबाजी और अनुभवहीनता में जो प्रथम पात्र हाथ लगा, वह आनन्द ही था। दीदी, आज जब मैं घर-बार, पति-बच्चों वाली हूं और जब इस उम्र के बाद जैसा तुम्हारा इरादा है तुम शादी नहीं करोगी, पता नहीं कौन ऊंचा रहा, कौन नीचा। हाई स्कूल स्तर की नैतिकता और मध्यवर्गीय दोहरेपन की जिन्दगी ने लगता है हम दोनों को ही पटखनी दे दी।

खैर, तुमने चाहे आनन्द से कहा या नहीं, वह जल्दी ही एक महीने के अन्दर मुझे ब्याह कर ले गया और अब सारी दुनिया से अलग-थलग मैं अपने इस छोटे से संसार में रम गई हूं एक अच्छी पत्नी बनकर, एक मां बनकर और सबसे ज्यादा एक इज्जतदार बहू बनकर। तुम लोग भी सन्तुष्ट हो कि मैंने जिसके साथ प्रेम किया, शादी भी उसी से की, दस जगह हाथ नहीं मारे सो मुझे भी खूब सुखी और गर्वित हो जाना चाहिए। हर औरत यही करती है, उसका जीवन ही इसके लिए बना है—घर-बार, पति, बच्चे। मैं भी वही कर रही हूं। आखिर मुझमें ही ऐसी क्या खास बात है जो इससे अलग होकर सोचूं—ठीक है न।

काले अंधेरे की मौत

शाम हो गई है। नर्स अब आती ही होगी, जबरदस्त मुस्कराहट का एक लबादा ओढ़े। थोड़ी देर के लिए ही सही, कमरे के भीतर जमा मुर्दा अहसास बिखर जाता है इधर-उधर कोने में। आकर एक बेमतलब-सा ठहाका लगाती हुई कहती है वह—हलो माई डियर बॉय, कैसे हो? फिर टैम्परेचर, चार्ट, खिड़की के पर्दे सरकाना, दवा पिलाना, खाने के बारे में हिदायतें और चलते-चलते एक बार जरूर उसके माथे पर हाथ फेरकर एक हंसी—'लुकिंग मच बेटर टुडे, हाउ फास्ट यू आर रिकवरिंग।' मैं मुस्कराता हूं उसके इस मासूम झूठ पर। फिर भी यह ताजगी का एक झोंका है जो अब कल शाम तक के लिए मुल्तवी हो गया है।

ये खिड़की से दीखते पेड़ों के साये लम्बे और घने हो गए हैं और अब नीचे झुकते ही चले जाते हैं। अन्त मे मिल जायेंगे अन्धकार के साथ। अस्तित्व होते हुए भी अस्तित्वविहीन छायाएं। सुबह फिर सूरज आयेगा, किरणों को भेजेगा इनके पास स्फूर्ति और चेतना देकर। किरणें इन भूमिगत छायाओं को जीवन्त सूरज का, क्रान्ति का सन्देश देते हुए कुछ कहेंगी इनसे, उठायेंगी इन्हें और फिर खड़ा कर देंगी, वैसा ही कुछ जैसा उसने भी कभी करना चाहा था। पर मिला क्या उसे बदले में। तिल-तिलकर घुलती जिन्दगी और आज मौत के इन्तजार में घड़ियां गिनते ये क्षण, जिसे नर्स अपने ठहाकों में गुम कर देना चाहती है। ना—फिर वही मौत का ख्याल …अरे! ये पीली-सी धूप कैसी चली आई है खिड़की से अन्दर! कहीं

ये भी तो क्षयग्रस्त नहीं ? वैसे एक बात है बहुत मजेदार, उसकी जिन्दगी मे हर कोई बिना पूछे ही अन्दर आया है और उसने सभी को यथासम्भव स्वीकार किया है ।

बचपन मे होश सम्भालने के बाद से जो पहली चीज उसे याद है वह है मा और बाबूजी की लड़ाई जिसका पटाक्षेप मा की पिटाई के साथ ही होता । मा पिटती रहती और बाबूजी को गन्दी-गन्दी गालिया देती रहती चीख-चीखकर । बाबूजी थककर चले जाते अपने कमरे में तो मा भी रोती-बकती आकर पड़ जाती उसके साथ बिस्तर पर । बात यह थी कि बाबूजी के अनुसार मां उनके लायक नहीं थी जैसाकि उसे बाद में मालूम हुआ था । वह घर मे रहते भी बहुत कम थे । शायद उन्हें मालूम ही नहीं था कि उनकी जिन्दगी के पीछे विवश दो जन और चला करते हैं, डरे-डरे खोये-खोये से । शुरू-शुरू मे बहुत रोता था वह भी मा के साथ, पर बाबूजी के सामने तो जुबान बन्द हो जाती और आसू सूख जाते । वे उसे देव-कथाओं के राक्षस की तरह लगते जिसके जादू से वह पत्थर का बुत बन जाता । रात मे अक्सर चीखें मारकर उठ बैठता, लगता गला घुट रहा है । अजीब प्रेतलीला-सी रहती और भयावह वातावरण होता ।

अच्छा ही हुआ जो मा मर गई, वरना आज उसे इस हालत मे देख दु.खी होती । जब मा मरी थी तो रो भी नहीं पाया था वह, सहमा-सहमा-सा छिपता फिरा था घर के कोनों मे । मौसी ने आने पर खीचकर उसे गले लगा लिया और बुक्का फाडकर रो पडी । तब मौसी से लिपटकर वह बहुत रोया था । न जाने कितने जमाने के आसू भरे थे भीतर । वह मा के मरने का दु.ख था या शायद अपने एकाकी बोध का। अब उसके लिए तो कोई रोने वाला भी नहीं । दो-चार सूत्र थे जोडने वाले जो न जाने कहां-कहा बिखर गये है ? बाबूजी को क्या पता कि वह यहां है इस हालत मे है । उन्होने उसे उसी दिन मरा समझ लिया होगा जब पुलिस उसे पकडकर ले गई थी । सुना है कि वरुन दादा जेल मे ही दम तोड गये । वे तो बेचारे वैसे ही दुबले-पतले-से थे । अन्य बाकी साथी भी न जाने कहां-कहां छिटक गये । वह भी अगर इस मरणासन्न दशा तक न पहुंचता तो न छूटता । पूरा दल ही छिन्न-भिन्न हो गया ।

उसे न भूलेगी वह भयानक रात जब गांव के प्रतिष्ठित भद्रजन, चमारों को सबक सिखाने और उन्हें 'ठीक' करने के लिए लैस होकर चढ़ आये थे, क्योंकि उस क्षेत्र के प्रभावशाली नेता एवं भूतपूर्व विधायक ठाकुर दीवान-सिंह के यहां चोरी हो गई जो सुना गया कि खासी बड़ी थी। शक गया सबसे निकट के चमारों पर, जिनमें अधिकतर उन लोगों के गरीब हलवाहे थे। एक कारण और था। वह अपने दल सहित उन दिनों वहां कैम्प लगाये था जिसका उद्देश्य चमर-टोले के लोगों को शिक्षित करना था। रात की पाठशाला में उन लोगों को पढ़ाया जाता। यह सच है कि पढ़ाई केवल कापी-किताब तक ही सीमित न थी, वह उनकी जिन्दगी के हालात की भी पढ़ाई थी। उन्हें बताना था कि तुम्हें भी जीने का उतना ही हक है जितना स्काई स्क्रैपर में रहने वाले को। तुम्हें आसमान की ओर मुंह उठाकर जीने का हक मांगना है जो इतिहास बताता है कि मांगने से नहीं मिलता, उसे छीनना पड़ता है, लड़कर-मरकर लेना पड़ता है।

दल के नये-नये काम का उत्साह और अनुभवहीनता के साथ उचित नेतृत्व का अभाव—ये बात उनके मालिकों को ज्ञात हो गई। मालिकों ने चमारों को समझाया, डराया-धमकाया कि ये सब बदमाश हैं, इनके चक्कर में पड़ोगे तो तबाह हो जाओगे। काफी असर भी हुआ उन पर, लेकिन कुछ उत्साही नौजवान चमार साथ थे इसीलिए वहां जमे रहे वे लोग। उसका दल उन लोगों के छोटे-छोटे हर सम्भव काम करवा देता और भरसक उन की हर मामले में मदद करता। यू काम उन लोगों को रात में प्रौढ़ पाठ-शाला और दिन में बच्चों का स्कूल चलाना था। इस सबके बीच से बहुत बच-सम्भलकर, बिना किसी झगड़े-फसाद में फंसे अपना काम जारी रखे थे। हां, तो रात पुत्तन दौड़ता हुआ आया था उन लोगों के पास, जिसे उसने पुलिस-थाने भेजा औपचारिक रूप से खबर देने के लिए। वहां उसे पुलिस ने मारते-मारते अधमरा कर दिया कि—'साले शर्म नहीं आती, शरीफ लोगों को बदनाम करते हो', और वहीं थाने में बन्द कर दिया। स्वयं वह अपने साथियों सहित जब चमर-टोले में पहुंचा तो वहां भीषण हा-हाकार था। सारे झोपड़ों में आग लगी थी। दो-तीन मर्द मरे थे और लगभग आठ-दस घायल थे। एक-एक चमारन पर दस-दस शरीफों ने

पहले कभी नहीं सोचा था जिन्दगी के बारे में उसने, मौका ही नहीं मिला। लेकिन अब लगता है कि यह तो कल की ही बात है जब जिंदगी की शुरुआत हुई थी। कहते हैं कि मरते वक्त हर आदमी दार्शनिक हो जाता है, पर सच कभी नहीं सोचा था कि यूं इन्तजार की घड़ियां गिनते पड़े होंगे कि शायद कल का दिन ही अन्तिम हो। सोचने पर जबरदस्त घबराहट होती है और एक गोला-सा उठने लगता है पेट से, जो ऊपर छाती में फंस जाता है और सांस रुकने लगती है। अच्छा, कैसा लगेगा आखिरी वक्त में ? कुछ नहीं—एक बेहोशी-सी छाने लगेगी और वह डूबने लगेगा एक गहरे अंधेरेपन की अतल गहराइयों में—चारों ओर घना काला अन्धकार-ही-अन्धकार। चेतना बस इतनी भर कि अवश हाथ-पैरों की छटपटाहट उस काले समुद्र से निकलने की कोशिश में और तब वह गहराई अधिक और अधिकतम होती जायेगी जिसमें उसका सम्पूर्ण नीचे डूब जायेगा, जिसके विस्तार में चेतन-अचेतन समा जायेंगे, जीवन-अजीवन एक हो जायेगा—और तब ? फिर कुछ भी महसूस न होगा। इसी को दुनिया उसकी मौत कहेगी, चले आ रहे एक अस्तित्व की समाप्ति। ये क्रम युग-युग से, जीवन-इतिहास के आरम्भ से चला आ रहा है और न जाने कब तक चलेगा। कहते हैं एक दिन दुनिया भी खत्म हो जायेगी, सब खत्म हो जायेगा। तब इस अन्तिम समाप्ति के बाद हमारी क्या सार्थकता है, क्या उपलब्धि है ? क्या सब कुछ उस अन्तिम कालेपन की तरह ही शून्य है ? हर क्षण अब तो कल का प्रश्न-चिह्न लिये खड़ा रहता है। एक अनदेखी सलीब टंगी रहती है कन्धों पर और इस भार का अहसास हर क्षण गहरा होता चला आता है।

उसे ख्याल आता है कि पहले से रात के समय कमरे की घुटन से घबराकर वह बाहर आता सोने के लिए तो ऊपर होता दूर तक फैला आकाश। यह अनन्त काला विस्तार उसे अन्तिम शून्य का अहसास दिलाता लेकिन फिर कभी लगता कि यह कालापन भी आकर्षक है, चमकदार है, बिल्कुल जिन्दगी जैसा। एक बार सतीश ने उससे कहा था—तुम भाग्यशाली हो यार, तुम्हें खुला आकाश देखने को मिलता है, उसके नीचे सोना मयस्सर है, महानगरी में तो दुर्लभ है यह सब। ठीक कहता

था शायद वह। अब इस कमरे से जब आधी रात को चांद का टुकड़ा नजर आता है तो मन करता है कि छलांग लगाकर बाहर चला जाय, उस सम्पूर्ण को पाने के लिए।

सतीश का ख्याल आने पर मीता का भी ध्यान हो जाता है जो एक बार उससे अलग होकर फिर भरसक कोशिश करती रही जुड़ने की, लेकिन अबकी उससे नहीं, सतीश से। उसे मालूम था कि मीता की शादी सतीश से नहीं हो सकती, लेकिन कहा नहीं कभी। सोचा, कहेगी, जलते हो तुम। सतीश भी मीता की कृपा से निहाल होकर खासा इन्कलाबी हो गया था। कई बार उसने मीता से हमेशा साथ निभाने की कसमें खाई थीं चाहे उसे घरवालों से विद्रोह ही क्यों न करना पड़े। अपना कमायेगा खायेगा, न दें घरवाले कुछ, क्या फर्क पड़ता है। लेकिन था वह आखिरकार सेठ हीरालाल का इकलौता युवराज, जो लोहा-सीमेंट के थोक व्यापारी थे और कई लाख नकद व एक भव्य कोठी के मालिक, सो आखिरकार मोतीलाल बताशेवालों की लड़की ब्याह लाया। पहले कुछ ना-नुकर की तो बाप ने साफ कह दिया कि मुहब्बत जिससे चाहो करो, एक छोड़ दस-बीस से करो, लेकिन शादी मैं जहां कहूंगा, वहीं होगी। अन्त में सतीश ने आज्ञाकारी बालक की भूमिका निभाई। यूं भी डिप्टी-कलक्टरी में आ जाने पर काफी ऊंचे दाम लग चुके थे उसके। सतीश के इन्कलाब की मौत पर बहुत हंसा करते थे उन दिनों सब लोग।

मीता के लिए तब जरूर अफसोस होता था। एक बार फिर उसके पास जाना चाहा उसने, वास्तव में हमदर्दी के लिए लेकिन वह फिर गलत समझी। मीता, जो कभी पायल की झनकार की तरह आई थी उसके पास हौले-हौले, बेख्याली में गुनगुनाती-सी कुछ। उसने हमेशा उसे पास से गुजरनेवाले खुशबू के झोंके की तरह देखा था, सो विश्वास ही नहीं हुआ कि वह उसके इतने करीब है। पहले तो हिम्मत ही नहीं हुई उस खुशबू को हाथों में समेटने की, लेकिन धीरे-धीरे वह करीब आती गई, उसमें समाती गई और फिर अचानक क्या हुआ कि आंधी की तरह भाग चली वह तेजी से और फिर लौटकर न आई। बल्कि एक हिकारत और उपेक्षा का भाव उग आया था उसके चेहरे पर। मुखर तो वह पहले भी

नही था, पर क्या मीता उसकी आखों की भाषा नही पढ़ पाई ? चाहते हुए भी वह कह न पाया कभी कि मीता तुम मेरे लिए क्या नही हो । तुम मेरे साथ रहोगी तो मैं आकाश की ऊंचाइया छू लूगा, पार क्षितिज के इस सुनहरे प्रकाश को भी मुट्ठी मे भर लूगा । हा, कुछ और भी था उस भागने के पीछे । कई बार, जब उसकी देह की गध, दोनो को एक किए थी और चारो ओर अथाह लहरों का घेरा उन्हे ढके हुए था स्वप्निल फेन के नीचे, अचानक उसके कानो मे घंटिया-सी बजने लगती और तब वह उस घेरे को तोड़ भाग चलता उस ओर जहा पसीने-मिट्टी और कीचड की गंध थी, कटीले पत्थरों का मैदान था । वहां पर वह अकेला नही बहुत लोग होते । उस वक्त उनका फरमान भी उतना ही जरूरी होता जितना मीता की आंखों का आकर्षण । शायद ऐसे समर्पित क्षणों में घटियों के बजने और उसके साथ घेरा तोड उसके निकल भागने का कोई औचित्य नही था । पर यह उसके बस मे नही था । वह यह भी समझता था कि मीता परिचित है, उसके खंडों मे बंटे व्यक्तित्व से और अब सभी खडो को सहेजे रखना, तरतीब देना उसका काम है । अब लगता है कि गलती उसकी भी थी । आरंभ मे ही अपने खंडों में बंटे व्यक्ति को दिखा देना चाहिए था, उसे विश्वास में लेना चाहिए था । दरअसल बहुत सारी अपेक्षा करने लगा था वह उससे । अच्छा अब अगर उसे मालूम हो कि चार साल इधर से उधर लुढ़कता हुआ वह जेल के सीखचे बदलता रहा कि आज उसका भीतर-बाहर सब टूट-टूट कर खत्म हो गया है, क्या वह आयेगी ? पता नही, अब तो उसने भी शादी कर ली होगी, बच्चों वाली होगी । याद आता है इवान तुर्गनेव का एक नायक बजारोव—वह भी तो इसी प्रकार मरने का इतजार करता था, बहादुरी के साथ मरने की कोशिश में । लेकिन यह उस जैसी बहादुरी के साथ जी पाया कि नही, कह नही सकता ।

अचानक दास साहब का ख्याल हो जाता है । वे होते आज तो जरूर चश्मे के भीतर से झांकते हुए कहते—वैल डन माय चाइल्ड, वैल डन-बी ब्रेव फार लाइफ एण्ड मोर फॉर डेथ । सच कहा जाये तो दास साहब ही थे, जिन्होंने एक दिशा दी थी, उसके खोये सहमे से अंतर को खोलकर फैला दिया था उसके सामने । कहा से इतनी लचक, मजबूती आ गई थी

कि वह बौना-सा अंतर, अपरिमित फैलता ही चला गया। खुद उसे विश्वास न होता कि क्या यही है वह ? स्वयं को आज तक उसने पहचाना कैसे नही ? उसे लगा वह तो बहुत सक्षम है, क्या कुछ नही कर सकता। सर हुक्म तो करें और सचमुच वह कक्षा के ही नही, उसके दिमाग के, जिंदगी के भी टीचर हो गये। उसे महसूस होता कि उसने अभी संसार मे आकर आखें खोली है, बहुत-सी चीजें अब ही जानी हैं। उसे अब अपने अलावा कुछ दूसरों के लिए भी सोचना है। अनंत काल से चली आ रही दबावों की पर्तें जो बढते-बढते एक अभेद्य दीवार बन गई हैं, और जिसके नीचे आधा ससार दबा है, अब उसे स्पष्ट नजर आने लगी। यह दीवार ही थी वह जिसकी धुध इस कदर दिमाग पर छा गई कि फिर चैन से नही बैठ सका वह।

आज जब यह सोचता है तो लगता है कि वह तो कही अच्छी जिंदगी जिया। यह तो संयोग कि 'वह' नामक व्यक्ति उन भूमिगत प्राणियो के बीच पैदा न होकर दीवार से ऊपर के सुसंस्कृत, सभ्य ससार मे पैदा हुआ, पला, बढा सो उस नियति से बच गया। उसकी जिंदगी का एक भी पल यदि इस दीवार को तोडने या सरकाने मे सफल हुआ तो वह अपने जीने को सार्थक समझेगा। अतिम डूबते क्षणो मे, चेतन से अचेतन संसार मे बहते हुए, वह इन्ही सफल क्षणों को याद करेगा। तब वह चिर अनत कालापन, वह अतिम सत्य भयावह न होगा। अपने जीने की सार्थकता उसके साथ होगी। कमरे में ढेर सारा अंधेरा भर गया है, पर भीतर उसके अपूर्व प्रकाश है और यह प्रकाश बढता ही जा रहा है।

लहरों के बीच

दोनों पार्सल तैयार कर, उसने हाथ फैला जमुहाई ली। सोचा, अब कल ही रवाना हो पायेंगे ये। उसने हिसाब लगाया, अभी तो पांच-छः दिन का समय है, ठीक समय पर मिल जायेंगे यह सुबोध को। पसंद तो आना चाहिए उन्हें यह उपहार। आखिर दूरी बहुत-सी नामालूम-सी लगने वाली चीजों की अहमियत बढ़ा देती है। बिट्टू के लिए उसने अलग पार्सल किया है, वह जरूर अपनी पसंद की चीजें पाकर खुश होगा।

उसे याद है जब शादी के बाद पहली बार उसने सुबोध को उसकी बर्थ-डे पर बाकायदा गिफ्ट पैकेट बनाकर प्रेजेन्ट किया था। कितना हंसा था वह और उसे बिल्कुल बचकाना काम करार दे दिया था। पैकेट खोल कर खूबसूरत सिगरेट-केस उसने यूं स्वीकार किया मानो किसी बच्चे की मासूम जिद को पूरा कर, अहसान किया हो। वह चाहती थी सुबोध अपने पुराने केस की जगह जो उसे किसी मित्र ने दिया था, इसे रख ले, हालांकि थी यह निहायत भावुकता। उस वक्त उसे हंसते देख सविता का दिल चाहा कि उस सिगरेट-केस के टुकड़े-टुकड़े कर वहीं उसके मुंह पर दे मारे, लेकिन वैसा कुछ नहीं कर सकी वह। केवल एक खिसियानी हंसी के साथ बोली—

"क्यों, क्या पसंद नहीं आया, यह?"

"पसंद तो बहुत आया, लेकिन इसकी जरूरत क्या थी बेबी—मेरे पास था तो एक।" और उसके गाल थपथपा दिए उसने।

डैनी भी अक्सर बहुत लाड में उसके गाल थपथपा देता है, लेकिन

उसके स्पर्श में बहुत अन्तर है, यह उसने हमेशा महसूस किया है। वह सविता को अपने बराबर का समझता है, हर स्तर पर अपने जैसा, हालांकि इस जगह यह समानता कुछ असामान्य-सी लगती है। उसे यहां आने पर लगा है कि अभी यहां के लोग, हिंदुस्तानियों के बारे में अपने पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं हो पाए हैं, इसलिए मानसिक स्तर पर समानता की बात काफी कठिन है।

उसने जब यह इंस्टीट्यूट जॉइन किया, तो प्रोफेसर हडसन ने अपने मानस में संभवतः उसका दर्जा अपने अन्य विद्यार्थियों की तुलना में सबसे नीचा निर्धारित किया था, ऐसा अक्सर उनके कमेंट्स और व्यवहार से जाहिर होता था। वकौल सुबोध के ही, उसका बाहरी व्यक्तित्व भी ऐसा प्रभावशाली नहीं कि पहली बार में ही लोगों पर जबरदस्त धांसू प्रभाव डाल उन पर हावी हो सके। इसीलिए पूरे छः महीने की कठिन मेहनत के बाद ही उन पर यह साबित कर सकी कि वह उनके सर्वश्रेष्ठ तीन-चार विद्यार्थियों में से एक है।

इसके बावजूद जब डैनी ने उससे कहा कि वह उसके इस खामोश और सहमेपन से ही आकर्षित हुआ, तो बहुत अजीब-सा लगा उसे। डेनियल जो खुद में एक संपूर्ण व्यक्ति है, हर तरह की मित्रमंडली का चहेता हीरो, ढेर सारी गर्ल फ्रेंड्स से घिरा हुआ वह, उन सबसे ऊपर उसकी कम्पनी पसन्द करे, पहली बार गर्व हुआ सविता को अपने ऊपर, आखिर कुछ जरूर ऐसा होगा उसमें, तभी न।

सुबोध को अगर मालूम हो जाए यह सब तो क्या प्रतिक्रिया होगी उस पर? वह जरूर कहेगा कि एक भारतीय नारी जो एक पत्नी है, एक बेटे की मां है, उसे यह सब कहते शर्म आनी चाहिए। पहले डैनी से मित्रता होने पर वह भी अक्सर अपराधी भाव से ऐसे ही सोचती थी। शुरू में किसी से उसकी जान-पहचान न थी, किसी से कोई संबंध, दोस्ती न थी। सब अपने-अपने काम में व्यस्त नजर आते और तब यह नितांत अकेलापन हरहराता-सा काटने आता। कभी मन करता, ये सब रिसर्च का झमेला छोड़ टिकट कटा वापिस चली जाय वह, अपने छोटे से परिवार के पास।

करती थी, कैसे हवाई जहाज से हजारों मील का सफर तय कर इतनी दूर आ सकी, खुद ताज्जुब होता कभी-कभी। फिर काम शुरू हो जाने पर सवेरे के आठ बजे से शाम के पांच-छः तो प्रयोगशाला में बीतने लगे! तब व्यस्तता एक वरदान बन गई।

धीरे-धीरे काम-काज, रहन-सहन व्यवस्थित हुआ तो फुर्सत भी होने लगी। इस बीच अन्य अनेक भारतीय छात्र-छात्राओं से उसका परिचय हुआ, उन सबने मिलकर एक इंडियन स्टूडेंट्स क्लब बनाया है, जहां कभी-कभी वीक-एंड्स पर या विशेष आयोजनों के दौरान वे सब आपस में मिलते, मौज मनाते हैं। अक्सर इन मौकों पर हिन्दुस्तानी भोजन, हिन्दुस्तानी संगीत आदि काफी हद तक लोगों की होमसिकनेस दूर करने के साधन हैं। सविता कभी-कभी ही जा पाती है इन आयोजनों में। ज्यादा मन नहीं लगता उसका। थोड़ी देर के शोर-शराबे और चहल-पहल के बाद, मन का बोझ और गहराता-सा महसूस होता है।

उस दिन छुट्टी थी। हॉस्टल की लगभग सभी लड़कियां बाहर गई थीं। उसकी तबियत कुछ ठीक न होने की वजह से उसने सोचा कि अपने कमरे में ही दिन बिताया जाए, पूरे आराम के साथ। अपने ब्लाक में वह अकेली हिन्दुस्तानी है, बाकी चार अन्य एशियाई मुल्कों की तथा तीन वहीं आस-पास की हैं। बेहद सर्दी का दिन था वह। बाहर खिड़की से दूर तक मैदान बर्फ से ढका नजर आ रहा था और उसके पार इंस्टीट्यूट का अगला हिस्सा था—भव्य और आलीशान जो उस वक्त शांत और सर्द था। वह पलंग पर लेटी सुबोध के और टेढ़ी-मेढ़ी लिखावट में बिट्टू के खतों को पढ़ रही थी। सामने उनकी तस्वीरों से भरा अलबम खुला रखा था। इतने में दरवाजे पर किसी ने थाप दी।

बाहर डेनियल था। वह समझ गई कि जेन को पूछना चाहता है। जेन उसके बगल वाले कमरे में रहती है और उस दिन डेनियल के साथ उसका कहीं जाने का प्रोग्राम था, लेकिन अचानक उसके कोई संबंधी आ गए थे और उसे फौरन उनसे मिलने के लिए जाना पड़ा। उसने डेनियल को उसका संदेश दे दिया। वह चलने को उद्यत हुआ तो उसने औपचारिकतावश उससे कॉफी के लिए पूछा—दरअसल वह भी अकेले पड़े-पड़े बोर हो रही थी।

उसके स्पर्श में बहुत अन्तर है, यह उसने हमेशा महसूस किया है। वह सविता को अपने बराबर का समझता है, हर स्तर पर अपने जैसा, हालांकि इस जगह यह समानता कुछ असामान्य-सी लगती है। उसे यहां आने पर लगा है कि अभी यहां के लोग, हिंदुस्तानियों के बारे में अपने पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं हो पाए हैं, इसलिए मानसिक स्तर पर समानता की बात काफी कठिन है।

उसने जब यह इंस्टीट्यूट जॉइन किया, तो प्रोफेसर हडसन ने अपने मानस में संभवतः उसका दर्जा अपने अन्य विद्यार्थियों की तुलना में सबसे नीचा निर्धारित किया था, ऐसा अक्सर उनके कमेंट्स और व्यवहार से जाहिर होता था। बकौल सुबोध के ही, उसका बाहरी व्यक्तित्व भी ऐसा प्रभावशाली नहीं कि पहली बार में ही लोगों पर जबरदस्त धाक प्रभाव डाल उन पर हावी हो सके। इसीलिए पूरे छः महीने की कठिन मेहनत के बाद ही उन पर यह साबित कर सकी कि वह उनके सर्वश्रेष्ठ तीन-चार विद्यार्थियों में से एक है।

इसके बावजूद जब डैनी ने उससे कहा कि वह उसके इस खामोश और सहमेपन से ही आकर्षित हुआ, तो बहुत अजीब-सा लगा उसे। डेनियल जो खुद में एक संपूर्ण व्यक्ति है, हर तरह की मित्रमंडली का चहेता हीरो, ढेर सारी गर्ल फ्रैंड्स से घिरा हुआ वह, उन सबसे ऊपर उसकी कम्पनी पसन्द करे, पहली बार गर्व हुआ सविता को अपने ऊपर, आखिर कुछ जरूर ऐसा होगा उसमें, तभी न।

सुबोध को अगर मालूम हो जाए यह सब तो क्या प्रतिक्रिया होगी उस पर? वह जरूर कहेगा कि एक भारतीय नारी जो एक पत्नी है, एक बेटे की मां है, उसे यह सब कहते शर्म आनी चाहिए। पहले डैनी से मित्रता होने पर वह भी अक्सर अपराधी भाव से ऐसे ही सोचती थी। शुरू में किसी से उसकी जान-पहचान न थी, किसी से कोई संबंध, दोस्ती न थी। सब अपने-अपने काम में व्यस्त नजर आते और तब वह नितांत अकेलापन हरहराता-सा काटने आता। कभी मन करता, ये सब रिसर्च का झमेला छोड़ टिकट कटा वापिस चली जाय वह, अपने छोटे से परिवार के पास। नहीं चलेगा उससे यह सब। वह जो अकेले रेल का सफर करने से घबड़ाया

करती थी, कैसे हवाई जहाज से हजारों मील का सफर तय कर इतनी दूर आ सकी, खुद ताज्जुब होता कभी-कभी। फिर काम शुरू हो जाने पर सबेरे के आठ बजे से शाम के पांच-छः तो प्रयोगशाला में बीतने लगे। तब व्यस्तता एक वरदान बन गई।

धीरे-धीरे काम-काज, रहन-सहन व्यवस्थित हुआ तो फुर्सत भी होने लगी। इस बीच अन्य अनेक भारतीय छात्र-छात्राओं से उसका परिचय हुआ, उन सबने मिलकर एक इंडियन स्टूडेंट्स क्लब बनाया है, जहां कभी-कभी वीक-एंड्स पर या विशेष आयोजनों के दौरान वे सब आपस में मिलते, मौज मनाते हैं। अक्सर इन मौकों पर हिन्दुस्तानी भोजन, हिन्दुस्तानी संगीत आदि काफी हद तक लोगों की होमसिकनेस दूर करने के साधन हैं। सविता कभी-कभी ही जा पाती है इन आयोजनों में। ज्यादा मन नहीं लगता उसका। थोड़ी देर के शोर-शराबे और चहल-पहल के बाद, मन का बोझ और गहराता-सा महसूस होता है।

उस दिन छुट्टी थी। हॉस्टल की लगभग सभी लड़कियां बाहर गई थीं। उसकी तबियत कुछ ठीक न होने की वजह से उसने सोचा कि अपने कमरे में ही दिन बिताया जाए, पूरे आराम के साथ। अपने ब्लाक में वह अकेली हिन्दुस्तानी है, बाकी चार अन्य एशियाई मुल्कों की तथा तीन वहीं आस-पास की हैं। बेहद सर्दी का दिन था वह। बाहर खिड़की से दूर तक मैदान बर्फ से ढका नजर आ रहा था और उसके पार इंस्टीट्यूट का अगला हिस्सा था—भव्य और आलीशान जो उस वक्त शांत और सर्द था। वह पलंग पर लेटी सुबोध के और टेढ़ी-मेढ़ी लिखावट के बिट्टू के खतों को पढ़ रही थी। सामने उनकी तस्वीरों से भरा अलबम खुला रखा था। इतने में दरवाजे पर किसी ने थाप दी।

बाहर डेनियल था। वह समझ गई कि जेन को पूछना चाहता है। जेन उसके बगल वाले कमरे में रहती है और उस दिन डेनियल के साथ उसका कहीं जाने का प्रोग्राम था, लेकिन अचानक उसके कोई संबंधी आ गए थे और उसे फौरन उनसे मिलने के लिए जाना पड़ा। उसने डेनियल को उसका संदेश दे दिया। वह चलने को उद्यत हुआ तो उसने औपचारिकतावश उससे कॉफी के लिए पूछा—दरअसल वह भी अकेले पड़े-पड़े बोर हो रही थी।

न जाने क्या सोच कर वह अन्दर आकर बैठ गया और जब तक उसने कॉफ़ी बनाई, वह उससे उसकी रिसर्च के काम के बारे में पूछता रहा, सामने रखे अलबम के पन्ने उलटता रहा।

"तो यह है तुम्हारा परिवार।" प्याला उठाते हुए उसने पूछा।

उसने डेनियल को बताया कि सुबोध एक प्रमुख कास्ट्यूम और डिजायन सेंटर का असिस्टेंट डाइरेक्टर है।

"वेरी स्मार्ट ऐंड वेल बिल्ट," सुबोध की एक तस्वीर को देखता हुआ बोला।

सविता मुस्कराई यह सुनकर। उसे मालूम था कि खुद सुबोध अपनी इस विशेषता के प्रति कितना सजग है। एक बार वह अपने सेंटर में आयोजित एक फैशन-परेड-समारोह में जाने के लिए तैयार हो रहा था। अपने आपको शीशे में निहारते हुए वह बोला—"कहो, कहीं कोई कमी।"

सविता ने उसे ऊपर से नीचे तक भरपूर निगाहों से एक बार देखा, सचमुच बिना नुक्स के तैयार था वह। एकाएक उसका मन एक अजीब वितृष्णा से भर गया। ऐसा लगा मानो वह उसका जीता-जागता पति नहीं, एक शो-केस में रखा माडेल भर हो। उसकी टाई की नाट थोड़ा खींचती-सी बोली वह—"काश, तुम थोड़े से रफ़—बेतरतीब होते—"

"तो ?" कौतुक-सा भर आया सुबोध की आंखों में।

सविता ने सोचा कि वह कहे कि तब तुम्हारी मुखरता में मेरा भी योगदान होता। अभी तो तुम्हारा हर काम, तुम्हारे व्यक्तित्व का हर हिस्सा, इतना सेट और सुव्यवस्थित लगता है कि डरती हूं, कब कौन-सी चीज अपनी जगह से हट जाए और तुम जो हो वह भी न रह पाओ।

लेकिन सामने सिर्फ इतना भर कहा—"तब शायद तुम मेरे होते !"

सुबोध यह सुन ठहाका मारकर हंस पड़ा था।

"तुम जिसे अपने हिस्से की कमी समझती हो, वह तो मेरे प्रोफेशन का हिस्सा है, माई डियर। वह अपनी जगह, तुम अपनी जगह, और फिर थोड़ा फ्लर्टेशन तो स्मार्टनेस बढ़ाता ही है।" और शरारत से उसने आंख मार दी सविता की ओर।

ऐसे अवसरों पर बहुत बार उसने सोचा कि यदि वह भी कुछ आकर्षक

और प्रभावशाली मित्र बना सके, सुबोध से अलग हटकर दूसरों के साथ भी अपने आप को इन्वॉल्व कर पाए तो शायद वह भी उसकी तरह तनाव-रहित हो, बेफिक्री के साथ खिलखिलाकर हँस सकती है, छोटे-छोटे प्रश्नों और संदेहों को यूही ठोकर से हवा मे उछाल सकती है, लेकिन उसके अन्दर का भय और सदंपन लोगों के सामने उसकी मुखरता को जमा देता। उसकी हँसी को सीमित कर देता और उसके आगे बढ़ते हाथों को रोक लेता—और फिर, यही असहायता उसकी खीझ का कारण होती। हो सकता है गलती सुबोध के उन्मुक्त स्वभाव की नही, स्वच्छद हंसी की नही, उसकी स्वयं की विवशता और असहायता की हो।

आज यह सब यदि वह सुबोध मे कहने बैठे तो वह यही कहेगा कि अलग रहकर वह बड़े दार्शनिक अन्दाज मे भाषण करना सीख गई है। सच तो यह है कि उससे अलग होकर जब अपने कमजोर पैरो पर खुद सारा वजन डाल खड़ा होना पड़ा तो बहुत सारा यथार्थ समक्ष मे आ गया। अब यहां की सारी परेशानियां और नये स्थान और माहोल की घबराहट अकेले ही झेलनी पड़ी और साथ ही खूबसूरत मौसम की खुशनुमा बहार भी अकेले जब्त की। यहां आजकल बसन्त का मौसम सचमुच बहुत खूबसूरत है। कुछ प्रकृति की देन और कुछ आदमी के अपार साधनों के साथ उसकी कल्पनाशीलता। यहां सुबोध होता तो बहुत एन्ज्वाय करता। हिन्दुस्तान मे तो आजकल गर्मी और लू का मौसम होगा, लेकिन यहां की गुनगुनी धूप और चारों ओर फूलो की रगीनी सारा वातावरण रग की फुहार और सुगन्ध से भर देती है।

पिछले वीक एण्ड पर डैनी का आग्रह था कि समुद्र के किनारे पिक-निक पर चला जाए। पहले तो वह कुछ अनमनी-सी रही फिर सोचा क्या हर्ज है, अकेलेपन की बोरियत से बचा जा सकता है। ढेरों सामान पीछे कार पर लाद, वह सवेरे ही आ गया, उस दिन उसके हॉस्टल। कुछ थोड़ा-बहुत काम जो वह करना चाह रही थी, छुड़वा कर वह उसे तेज हवा के झोंके की तरह खींच ले गया। रास्ते भर वह बोलता रहा, इधर-उधर की जगहें दिखाता, समझाता रहा।

उस वक्त एक छोटे गांव से होकर वे लोग गुजर रहे थे कि एक

सा रेस्तरां दिखाई दिया। तब तक गर्मी थोड़ी हो चली थी। डैनी की इच्छा थी कि बैठकर बियर पी जाए और तब चला जाए आगे।

वे दोनों अन्दर बैठे थे। हल्का-हल्का-सा अंधेरा था वहां। कुछ थोड़े लोग और थे लेकिन सभी एक-दूसरे की उपस्थिति से अनभिज्ञ। डैनी ने उसकी कमर में हाथ डाल उसे अपनी ओर खींच लिया। कुछ पल चुप रही वह, फिर धीरे से उसका हाथ अलग कर दिया उसने।

"नहीं डैनी, यह सब नहीं।"

"क्या सब ?" हंस दिया वह और फिर अचानक गम्भीर हो गया।

आगे के क्षण खामोशी में लिपटे हुए थे। बियर खत्म कर दोनों चुपचाप आकर फिर गाड़ी में बैठ गए।

काफी देर बाद, सन्नाटा तोड़ते सामने देखता हुआ बोला वह—"तुम दरअसल हिन्दुस्तानी हो न।" वह चुप रही। उसने कहना चाहा, सिर्फ हिन्दुस्तानी नहीं, कुछ और भी, जैसा एक बार सुबोध ने उससे कहा था। बात उसके क्लब की एक पार्टी की थी। बीत रही शाम के धुंधलके में लॉन पर जगह-जगह छिटकी मद्धिम रंगीन रोशनियों के बीच लोग इधर-उधर बिखरे थे। हंसी, फुसफुसाहटों और यदा-कदा कहकहों से गूंजता वातावरण साइकेडेलिक प्रभाव उत्पन्न कर रहा था। पार्टी अपने पूरे उठान पर थी और वह दूसरी ओर सुबोध की कुछ कुलीग्स की पत्नियों के साथ थी। उसने स्पष्ट देखा था कि उसने अपने सेन्टर की उस नई मॉडल गर्ल को अपनी ओर खींच चूम लिया था, और वह उसे एक ओर धकेल, हंसती हुई चली गई थी। उसने आंखें फेर अनदेखा कर दिया, लेकिन लौटते हुए जब उसने इसका जिक्र सुबोध से किया तो वह बहुत गम्भीर होकर बोला था—"सवी, हरदम तुम मध्यवर्गीय लड़कियों की तरह क्यों व्यवहार करती हो। तुम्हारे लिए जो गलत है, वह मेरे लिए, मेरी तहजीब के लिए और मेरी सोसायटी के लिए बहुत आवश्यक है।"

शायद नशे के सरूर में ही वह इतनी सफाई से सच बोला पाया था।

और अब ऐसा ही कुछ डैनी भी कह रहा था। उसने डैनी की बात का बुरा नहीं माना, कोई जवाब भी नहीं दिया। ढेर सारे ख्यालों के बीच डैनी और सुबोध की आवाजें गड्ड-मड्ड-सी हो रही थीं।

"तुम क्या सोचती हो, तुम्हारे पति तुम्हारे पीछे तपस्या करते होंगे। उसकी आवाज दूर किसी गुफा से आती लग रही थी। और भी न जाने क्या-क्या कह रहा था वह।

उसे नहीं मालूम कब उसका सर डैनी के कन्धों पर समर्पित हो गया था और उसकी मजबूत बांह उसके गिर्द आ गई थी।

अब सोचती है वह, डैनी उसकी आवश्यकता भर तो है और यह कुछ समय की आवश्यकता कैसे उसके और उसके पति के सम्बन्धों के बीच आ सकती है। वर्तमान तो केवल वर्तमान है, उसका सुख क्यों आगे-पीछे की कल्पना के कांटों से बांधा जाए। जो अभी मिल रहा है, उसे जो कल न था, उस पर न्यौछावर करना क्या मूर्खता नहीं। उसे लगा वह सुबोध के अब ज्यादा नजदीक है। वह दोनों अब एक ही धरातल पर खड़े एक-दूसरे के प्रति ज्यादा ईमानदार हैं।

समुद्र का किनारा सामने दीख रहा था, युवक-युवतियों के जोड़े बेदिंग-सूट में जहां-तहां मस्त, समुद्र तट पर लेटे दुर्लभ धूप का भरपूर उपयोग कर रहे थे। डैनी की उंगलियां उसके चेहरे पर फिरती कुछ टटोल रही थीं और वह आंखें बंद किए अपने चारों ओर जबरदस्त लहरों का सैलाब महसूस कर रही थी।

अपने साथ लिये हुए डैनी अब उसे कार से नीचे उतरने में मदद कर रहा था और वह उमड़ती लहरों के बीच पूर्णतः आश्वस्त थी।

ममी

उसे अब अपने घर की दीवारें सिकुड़ती-छोटी होती मालूम देती हैं और ऐसा लगता है मानो छत धीरे-धीरे नीचे को सरक रही हो। उसके साथ यह महसूस होने लगता है कि वह बीच में रह जाएगी और एक स्थिति ऐसी आएगी कि वह उन आगे-पीछे, इधर-उधर और ऊपर-नीचे से नजदीक आती दीवारों के बीच अन्त में दब कर रह जाएगी। उसका दम-सा घुटने लगता है और एकबारगी फिर वह टैरेस पर आकर बाहर झांकने लगती है। नीचे सड़क पर तरह-तरह के आते-जाते हर पल नए चेहरे उसका ध्यान बंटा लेते हैं और वह गुजरने वाले चेहरे के भाव पढ़ने की कोशिश करती है, एक क्षण में चेहरे के पीछे चलते उसके इतिहास और वर्तमान पर अपनी कल्पना को केन्द्रित करती है कि फौरन वह आगे सरक जाता है और उसके पीछे नया चेहरा आ जाता है। यह सिलसिला चलता रहता है जिसमें उसे बेहद मजा आता है। घन्टों बिता सकती है वह इस तरह। यह उसका बचपन से ही प्रिय खेल रहा है। पहले तो वक्त ही नहीं था इस तरह खाली बैठे लोगों को निहारते रहने का लेकिन अब तो बस फुर्सत ही फुर्सत है।

वह अन्दर आ गई सो रहे नन्हे विकी को देखने के लिए। तीन-चार दिन के लिए आया छुट्टी पर गई हुई है।

अन्दर आने पर फिर वही दमघोटू अहसास। विकी सो रहा था अभी। उसने घड़ी पर नजर डाली। तरु के स्कूल से आने में अभी खासा समय

था। उसने यूं ही बैठे-बैठे अपनी चोटी खोल डाली और फिर ड्रेसिंग-टेबिल के सामने जाकर खड़ी हो गई। ऊं-हूं—अबकी बार बाल कटवा लेगी—कन्धों तक! एक मैगज़ीन उठा ली लेकिन दिल नहीं लगा पढ़ने में। सामने रखा अक्षय का पत्र एक बार फिर पढ़ने लगी। पत्र उसके अभियान और दल की कारगुज़ारियों और सफलताओं के वर्णन से ही भरा है। कुछ अखबारों की कतरनें भेजी हैं जिनमें रोम, बर्लिन और पेरिस में खेले गए नाटकों पर विस्तृत रिपोर्ट है। बर्लिन के ही एक और अखबार में अक्षय का एक इन्टरव्यू—भारतीय रंगमंच और नाटकों के बारे में छपा है। इसके बाद उसका प्रोग्राम लन्दन में है। खुशी और उत्साह से भरा है पत्र। उसने वापिस वहीं रख दिया उसे। उसे लगता है वह लगातार अंगूठा दिखा-दिखाकर चिढ़ा रहा है उसे, टिलिस-टिलिस-टिलिस। वह फिर बाहर आ गई। बाहर ताज़ा हवा है। वह सामने लगा अमलतास आजकल गुच्छ-गुच्छ पीले फूलों से लदा है। डालियां अपने ही भार से झुकी धीरे-धीरे नज़ाकत के साथ संभल-संभल कर झूमती है, आमन्त्रण देती हुई।

आमन्त्रण, ठुकरा देना—वह भी अपने प्रिय पात्र का—कभी-कभी बहुत मुश्किल हो जाता है।

अक्षय से उसकी मुलाकात उस समय हुई थी जब उसका स्वयं का सितारा बुलन्दी पर था। ड्रामा करने का शौक बचपन से ही था। घन्टों अपने आपसे बातें किया करती या फिर शीशे के सामने खड़े होकर तरह-तरह की मुद्राएं बनाती रहती। बड़े होने के साथ-साथ उसका यह शौक एक नियमित कला के रूप में बढ़ता गया, निखरता गया और पहले स्कूल-कालेज के स्टेज पर, फिर रेडियो और अन्त में व्यावसायिक और अव्याव-सायिक स्टेज पर आई। अभिनय उसका जीवन था, अभिनय ही उसकी सम्पूर्ण महत्वाकांक्षा थी। दिन अगर लम्बे-लम्बे शुष्क रिहर्सलों से भरे होते तो शामें प्रदर्शन की भीड़ और तालियों की गड़गड़ाहटों के बीच बीतती और रात, व्यस्त दिनचर्या की थकान के बाद सफलता की महक में डूबी सन्तोष और आत्मतुष्टि भरी बेसुध नींद में। ग्रीन रूम की अस्त-व्यस्त गंध और मंच की तेज़ रोशनियों के बीच देखते-देखते न जाने कब वह उस ऊंचाई तक जा पहुंची थी।

मां कभी-कभी कहती—बेटा, अब शादी-ब्याह की भी तो सोचो। ऐसे ही कब तक जिन्दगी गुजारोगी। आगे तो अभी पूरी उम्र पड़ी है—। बस, उसे इन्हीं सब बातों से बहुत एलर्जी होती। ये लोग सबको एक ही लाठी में हांकना चाहती हैं। अरे दीदी की तो हो ही गई, छोटी की भी कर दो। हमें नहीं करनी शादी-वादी और न ही ये हमारे बस का है। ये घर का चूल्हा-चौका देखो, आदमी की आंख-भौं देखकर जबान चलाओ और फिर उठाओ गू-मूत उसके बच्चों का। हम ऐसे ही भले हैं। भला सोचो, पागल कुत्ते ने काटा है क्या कि जानते-बूझते हाथ-पैर बंधवा लें अपने—और वह कमरे में जाकर अपने संवाद रटने में व्यस्त हो जाती।

दिन उसके बाद भी वैसे ही गुजरते रहे, रातें सरकती रहीं, प्रदर्शन होते रहे, आज यहां तो कल वहां। ऐसे में ही अक्षय से उसका सामना हुआ था।

एक नये नाटक की तैयारियां हो रही थीं। एक पात्र के लिए अक्षय का चुनाव हुआ था। बहुत तो नहीं पर काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी उसकी। तब वह नया-नया ड्रामा स्कूल से प्रशिक्षण लेकर आया था।

वह नाटक प्रदर्शित हुआ—खासा अच्छा, और सन्तोषप्रद। कला-समीक्षकों की राय अक्षय के बारे में बहुत अच्छी नहीं तो बहुत बुरी भी नहीं थी। उसके अभिनय को सराहा था, हौसला-अफजाई की थी और साथ ही अगर, मगर और लेकिन भी थे। स्वाभाविक रूप से वह भी उत्साहित था अपने पहले प्रदर्शन पर।

यह शायद इत्तफाक ही था कि कुछ दिनों बाद एक दूसरे नाटक में फिर उन्हें साथ काम करने का मौका मिला। दोनों ही प्रमुख भूमिकाओं में थे। बहुत लगन और मेहनत से काम करता था वह। दरअसल अभी सारा रास्ता उसके सामने बजर पड़ा था जिसे उसको बनाना था और वह इसमें सफल भी हुआ। इस नाटक के प्रदर्शन के बाद लोगों ने उसकी काफी प्रशंसा की कि भविष्य में अनेक सम्भावनाएं हैं उसमें लेकिन यह आम राय थी कि नाटक में मुस्तकिल वह उस पर हावी रही।

उसने अक्षय को उसके उत्तम अभिनय तथा लोगों की उसके प्रति उत्साहवर्धक तथा आशापूर्ण राय के लिए बधाई दी। वह हंसा पहले और

फिर धीरे से अपना मुंह उसके करीब लाकर बोला—देखिए लोग कहते हैं आप मुझ पर हावी रहो, अब मैं दिखाऊंगा आप पर हावी होकर।

वह अवाक् उसका मुंह ताकती रह गई।

उसे समझ नहीं आया कि मजाक कर रहा है या सचमुच चुनौती दी उसने। उसके बाद कुछ सयोग तथा कुछ स्वयं उसका आग्रह कि अक्षय अवश्य उसके साथ टीम मे होता। एकाध बार ऐसा भी हुआ कि वह नहीं था साथ में। ऐसी परिस्थिति मे अजीब खालीपन का अहसास होता और पूरा आयोजन उसे निरर्थक और उद्देश्यहीन लगता। अक्षय की उपस्थिति मानो चुनौती के रूप मे उसकी सम्पूर्ण कला को जीवन्त और मुखर कर देती और न मालूम धीरे-धीरे कब वह उसके मन और मस्तिष्क पर छा गया। एक समय जबकि वह सोचती थी कि थोड़ा सहारा अगर अक्षय को मिले तो वह एक अद्वितीय कलाकार के रूप में उभर सकता है और अब यह कि अनजाने ही वह उस पर इस कदर निर्भर हो गई कि वह उसकी भूमिकाओं और उसके चुनावों मे सलाह देने लगा।

उन्ही दिनों की बात है जब उसका एक नाटक प्रदर्शित हुआ था और वासुदेव साहा भी उपस्थित थे। साहा बम्बई के एक प्रतिष्ठित फिल्म निर्देशक। वह अपनी खुद की एक फिल्म के निर्माण मे लगे थे। वह पुलकित हो उठी थी जब उन्होंने कहा था कि वे उससे मिलना चाहते हैं।

साहा घर पर आए। वह और अक्षय दोनो ही वहां मौजूद थे। उसने अक्षय का परिचय करवाया उनसे।

"अच्छा, अच्छा। आप ही थे कल पिता की भूमिका में। अच्छी सम्भावनाएं हैं आप में। आप भी जरूर ऊपर चढ़ेंगे!"

और थोड़ी देर की बातचीत के बाद उन्होंने अपना मतव्य जाहिर किया।

"रीता जी, मैं चाहता हू मेरी पहली फिल्म में आप मुख्य भूमिका करें। गैर-फार्मूला वाली कलात्मक फिल्म है। सचमुच आप जैसे कलाकारो की जरूरत है आज फिल्म इन्डस्ट्री को।"

वह खुशी से भर उठी। अब उसका अभिनय उसकी कला, असंख्य लोगों तक पहुंचेगी।

उसने अक्षय की ओर देखा। उसका चेहरा कसा हुआ था और वह धीरे-धीरे अपना अंगूठा कुतर रहा था। उसने धीरे से उसकी ओर संकेत किया—

"अक्षय जी भी आजकल धूम मचा रहे हैं स्टेज पर। अच्छा हो ये भी चलें वहां।"

"जी हां, जी हां! लेकिन अभी इस फिल्म में इनके मन-माफिक रोल नहीं मिल पाएगा इन्हें। इनके लिए हम दूसरी भूमिका सोचेंगे।"

और, साहा के जाने के बाद वह नाराज होने लगा था कि क्यों उसने उसकी सिफारिश करने की कोशिश की। वह कतई स्टेज छोड़कर नहीं जाना चाहता।

दो-तीन दिन तक सोचने के बाद उसने जब अक्षय से सलाह ली तो वह बहुत गम्भीरता से बोला—"मेरी राय है कोई विशेष लाभ नहीं होगा तुम्हें।"

"क्यों! पैसे की भी बात छोड़ो तो कला का एक माध्यम तो है वह। स्टेज पर केवल एक खास वर्ग जानता है, आम आदमी नहीं।"

"यह तो तुम बिल्कुल एन्टी-आर्ट बातें रही हो। फिल्म में क्या खाक कला होती है। अगर तुम वास्तव में कलाकार हो तो तुम्हें इन प्रलोभनों से बचना चाहिए। कला साधना चाहती है।"

"साहा अच्छे फिल्म निदेशक हैं। कुछेक फिल्में तो बहुत अच्छी बनाई हैं इन्होंने और कमिटेड आदमी हैं वह! हम लोग अगर सहयोग नहीं देंगे तो फिर हमें फिल्मों से शिकायत का क्या हक है।"

ठठाकर हंस पड़ा वह।

"तुम क्या सोचती हो, उसे वास्तव में कलाकार की तलाश है? अरे भाई, नया निर्माता है। कहानी भी साहित्यिक है। जाहिर है कोई क्यों रिस्क लेगा। इसीलिए जनाब बहुत आर्ट-आर्ट चिल्ला रहे हैं!"

न जाने कितनी देर तक वह अपने लच्छेदार तर्कों में उसे समझाता रहा। वह बस इतना समझ पाई कि उसकी चिर-संचित अभिलाषा का वह विरोध कर रहा है।

सच पूछो तो उस वक्त उस ऑफर को छोड़ते खास बुरा भी नहीं लगा

था। बहुत भावुक हो रही थी न वह उन दिनों। सचमुच उसकी मर्जी के बगैर कुछ सोच सकना भी उसे कठिन लगता था और ऐसे में ही उन लोगों ने विवाह करने का निर्णय ले लिया। अक्षय का आमंत्रण, उसके प्रेम का आमंत्रण, स्वयं उसके मन का समर्पण, इंकार की कहां गुंजाइश थी।

सहयोगियों, नाटक-प्रेमियों एवं साथी रंग-कर्मियों में काफी शोर था। स्टेज की जोड़ी अब हमेशा-हमेशा के लिए स्थायी जोड़ी हो गई थी। काफी रोमांचक और गुदगुदाने वाला वातावरण था। उसे भी बहुत सुख था। अपना प्रिय सदैव अपने साथ, घर भी बाहर भी। आलोचनाओं में, सफलताओं में, तेज रोशनियों में, तालियों के बीच, कैमरे की लाइट्स के सामने हर जगह साथ, हर जगह बराबर।

अक्षय को सजे-सजाये खूबसूरत कलात्मक घर का बहुत शौक था और सचमुच उनका घर एक आर्ट पीस मालूम देता। उसे घर में ठुमकते, थिरकते बच्चों की किलकिलाहट बहुत पसंद थी। उसका कहना था कि बच्चे घर को जीवंत बनाते हैं, ताजगी देते हैं और—तरु आई उनके बीच। यह नया अनुभव भी सुखद था उसके लिए। सच पूछो तो जो अक्षय की इच्छाएं थीं, उसकी भावनाएं थीं वह समर्पित थी उन पर पूर्ण रूप से और समर्पण में प्रश्न चिह्न नहीं होते—आंख मूदकर उतर भर जाना होता है गहरे में, फिर थामने वाली बलिष्ठ देह और भुजाएं होती हैं चारों ओर।

कुछ दिन जरूर बंधन सा रहा लेकिन फिर तरु थोड़ी बड़ी हुई तो वह भी साथ-साथ जाती। आया की गोद से देखती रहती अपने कलाकार माता-पिता को, उनके मुखौटे चढ़ाने को निरंतर बदलते चेहरों को।

पहली बार परेशानी तब महसूस हुई जब अक्षय को छोटी तरु का अकेलापन खलने लगा। वह तो अपने छोटे से संसार में ही प्रसन्न थी जो सुखद था और सुविधाजनक था, परन्तु अक्षय का कहना था कि एक अकेला बच्चा बहुत व्यक्तिवादी होता है अपने व्यवहार में और मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि किसी हद तक एबनार्मल भी होता है। उसे सचमुच खीज-सी महसूस हुई इन बातों से। अब या तो यहीं चक्कर पाल लो या फिर कुछ काम ही कर लो।

उन दोनों की यह पुरानी योजना थी कि अपना एक ड्रामा ग्रुप तैयार

उसने अक्षय की ओर देखा। उनका चेहरा कसा हुआ था और वह धीरे-धीरे अपना अंगूठा कुतर रहा था। उसने धीरे से उसकी ओर संकेत किया—

"अक्षय जी भी आजकल धूम मचा रहे हैं स्टेज पर। अच्छा हो ये भी चले वहां।"

"जी हां, जी हां! लेकिन अभी इस फिल्म में इनके मन-माफिक रोल नहीं मिल पाएगा इन्हें। इनके लिए हम दूसरी भूमिका सोचेंगे।"

और, साहा के जाने के बाद वह नाराज होने लगा था कि क्यों उसने उसकी सिफारिश करने की कोशिश की। वह कतई स्टेज छोड़कर नहीं जाना चाहता।

दो-तीन दिन तक सोचने के बाद उसने जब अक्षय से सलाह ली तो वह बहुत गम्भीरता से बोला—"मेरी राय है कोई विशेष लाभ नहीं होगा तुम्हें।"

"क्यों! पैसे की भी बात छोड़ो तो कला का एक माध्यम तो है वह। स्टेज पर केवल एक खास वर्ग जानता है, आम आदमी नहीं।"

"यह तो तुम बिल्कुल एन्टी-आर्ट बातें रही हो। फिल्म में क्या खाक कला होती है। अगर तुम वास्तव में कलाकार हो तो तुम्हें इन प्रलोभनों से बचना चाहिए। कला साधना चाहती है।"

"साहा अच्छे फिल्म निदेशक हैं। कुछेक फिल्में तो बहुत अच्छी बनाई हैं इन्होंने और कमिटेड आदमी हैं वह! हम लोग अगर सहयोग नहीं देंगे तो फिर हमें फिल्मों से शिकायत का क्या हक है।"

ठठाकर हंस पड़ा वह।

"तुम क्या सोचती हो, उसे वास्तव में कलाकार की तलाश है? अरे भाई, नया निर्माता है। कहानी भी साहित्यिक है। जाहिर है कोई क्यों रिस्क लेगा। इसीलिए जनाब बहुत आर्ट-आर्ट चिल्ला रहे हैं!"

न जाने कितनी देर तक वह अपने लच्छेदार तर्कों से उसे समझाता रहा। वह बस इतना समझ पाई कि उसकी चिर-संचित अभिलाषा का वह विरोध कर रहा है।

सच पूछो तो उस वक्त उस ऑफर को छोड़ते खास बुरा भी नहीं लगा,

दौड़ने वाली साथी। यहां पर अब अक्षय पुरुष है, सनातन पुरुष—दंड संभाले आगे-आगे चलता हुआ वह पीछे-पीछे चलती-घिसटती, आदिम पुरुष की छाया पकड़ती-भागती नारी।

शाम हो चली थी। वह तरु को हाथ पकड़कर नाचना सिखा रही थी। उसे अभी से नाचने का बहुत शौक है। जहां कहीं संगीत की धुन सुनाई दी, फौरन थिरकना शुरू कर देती है।

"हां—तो तरु शुरू करो, ता थेई-ताता थेई—" उसने तरु को हाथ पकड़ कर मुद्रा बताई।

"मा आप छोड़ दीजिए। हमें आता है अब, हम खुद करेंगे।" उसे अपनी समझदारी पर मा द्वारा अविश्वास बुरा लगा।

उसे अच्छा लगा तरु का यह विरोध। विरोध भी कभी-कभी आदमी को शक्ति देता है। अचानक ख्याल आया कि उसे आज अक्षय को पत्र लिखना है और साथ ही छोटे विकी का नवीनतम फोटो भेजना है। उसे तो अक्षय ने अभी तक देखा भी नहीं है। क्या लिखे वह उसे, कि उसकी सफलताओं, उपलब्धियों से वह बहुत प्रसन्न है, और कि उसी में वह अपना जीवन सफल और सार्थक समझती है—ना—यह नाटक का मुखौटा वह न लगा पाएगी। उसे अपना देय चाहिए। अपनी स्वयं की, नितांत अपनी उपलब्धि। फिर क्यों उसने खुद ही अपने गतिमय थिरकते खूबसूरत पैर काट कर अक्षय को भेंट कर दिये? आज यह सुन्दर-सा घर, दो प्यारे बच्चे और उनके बीच वह स्वयं—सब कुछ मानो सजा हुआ म्यूजियम हो, अक्षय का भरा-पूरा म्यूजियम। पता नहीं जिसे वह जीवन कहता है वह उसे इतना पथरीला जड़ क्यों नजर आता है। वह स्वयं भी आज एक मुर्दा 'ममी' से कम नहीं। खूबसूरत महलनुमा पत्थर की ऊंची गुफा—उसमें रखे नक्काशीदार रत्नजड़ित ताबूत में, सुनहरे रेशमी लिबास में लेटी निर्जीव—पथराई आंखों वाली 'ममी' जो अब एक जीवंत और खूबसूरत अतीत की याद भर है।

कितनी तेजी से चीजें बदल जाती हैं। अक्षय के निरन्तर बढ़ते जीवन

किया जाए और विदेशो का एक सबा राउंड लगाते हुए जगह-जगह नाटकों के आयोजन एवं प्रदर्शन किए जाए। विदेश भ्रमण तथा वहां अपनी कला के प्रदर्शन की उसकी यह इच्छा बहुत पुरानी थी। इस दिशा में काफी हद तक काम हो भी चुका था कि इस बीच एक स्टिल-बार्न बच्चे को उसने जन्म दिया और उसके बाद वह बहुत बीमार पड़ गई। नतीजा यह हुआ कि कुछ समय के लिए पूरा प्रोग्राम खटाई में पड़ गया। उसके बाद भी काफी अर्से तक उसके स्वास्थ्य ने उसे अधिक काम करने की इजाजत नहीं दी।

सबसे ज्यादा तकलीफ उसे तब हुई जब फिल्मों में काम करने के लिए अक्षय को निमन्त्रण मिले और कुछ दिन सोचने के बाद वह एक रात उससे बोला—"तुम क्या सलाह देती हो रीतू, मुझे जाना चाहिए बंबई कि नहीं।"

उसे तब मालूम हुआ कि वह उस निमंत्रण को कितनी गंभीरतापूर्वक ले रहा है।

"तुम सोचो अक्षय, मैं क्या बताऊं। सोचने और निर्णय लेने का काम तो मैं तुम पर डाल चुकी हूं। वैसे एक बार तुमने मुझे फिल्मों में काम करने से रोका था, याद है तुम्हें।"

"तुम्हें मैंने मना किया और आज भी मैं वही कहता हूं जो तब कहता था। लेकिन सोचता हूं थोड़ा पैसा ही कमा लिया जाए तो क्या हर्ज है। अपना ग्रुप आरगनाइज करना है। आगे पैसे की जरूरत तो पड़ेगी ही।"

अपनी बाह पर सिर टिकाए वह लगातार सिगरेट पिए जा रहा था। उसकी बगल में लेटी हुई वह उसका चेहरा पढ़ने में असमर्थ थी। ढेर सारी धुएं की लकीरें थी बीच में। यह क्या वही अक्षय है जिसे वह इतने दिनों से जानती है? उसे लगा उसकी आवाज कुछ बदली हुई-सी हो रही है। यह उस महत्त्वाकांक्षी की आवाज है जो सिर्फ दौड़ रहा है। उसकी आंखों में आंसू भर आये—अक्षय जाना चाहता है तो जाए बंबई। वह नहीं जाएगी साथ में। यहीं रहेगी। उसे जरूरत होगी तो वह आएगा उसके पास। सिर्फ श्रीमती अक्षय के रूप में जाना उसे गवारा नहीं? ठीक है, कुछ दिन घर-गृहस्थी हो सही। उसे मालूम हो चला था कि अब वह तनकर बैठी सिंहासन की राजमहिषि नहीं है और न ही हाथों में हाथ डाले साथ-साथ चलने-

दौड़ने वाली साथी। यहां पर अब अक्षय पुरुष है, सनातन पुरुष—दंड संभाले आगे-आगे चलता हुआ वह पीछे-पीछे चलती-घिसटती, आदिम पुरुष की छाया पकड़ती-भागती नारी!

शाम हो चली थी। वह तरु को हाथ पकड़कर नाचना सिखा रही थी। उसे अभी से नाचने का बहुत शौक है। जहां कहीं संगीत की धुन सुनाई दी, फौरन थिरकना शुरू कर देती है।

"हां—तो तरु शुरू करो, ता थेई-ताता थेई—" उसने तरु को हाथ पकड़ कर मुद्रा बताई।

"मां आप छोड़ दीजिए। हमें आता है अब, हम खुद करेंगे।" उसे अपनी समझदारी पर मां द्वारा अविश्वास बुरा लगा।

उसे अच्छा लगा तरु का यह विरोध। विरोध भी कभी-कभी आदमी को शक्ति देता है। अचानक ख्याल आया कि उसे आज अक्षय को पत्र लिखना है और साथ ही छोटे विकी का नवीनतम फोटो भेजना है। उसे तो अक्षय ने अभी तक देखा भी नहीं है। क्या लिखे वह उसे, कि उसकी सफलताओं, उपलब्धियों से वह बहुत प्रसन्न है, और कि उसी में वह अपना जीवन सफल और सार्थक समझती है—ना—यह नाटक का मुखौटा वह न लगा पाएगी। उसे अपना देय चाहिए। अपनी स्वयं की, नितांत अपनी उपलब्धि। फिर क्यों उसने खुद ही अपने गतिमय थिरकते खूबसूरत पैर काट कर अक्षय को भेंट कर दिये? आज यह सुन्दर-सा घर, दो प्यारे बच्चे और उनके बीच वह स्वयं—सब कुछ मानो सजा हुआ म्यूजियम हो, अक्षय का भरा-पूरा म्यूजियम। पता नहीं जिसे वह जीवन कहता है वह उसे इतना पथरीला जड़ क्यों नजर आता है। वह स्वयं भी आज एक मुर्दा 'ममी' से कम नहीं। खूबसूरत महलनुमा पत्थर की ऊंची गुफा—उसमें रखे नक्काशीदार रत्नजड़ित ताबूत में, सुनहरे रेशमी लिबास में लेटी निर्जीव—पथराई आंखों वाली 'ममी' जो अब एक जीवंत और खूबसूरत अतीत की याद भर है।

कितनी तेजी से चीजें बदल जाती हैं। अक्षय के निरन्तर बढ़ते जीवन

के साथ-साथ खुद जब से वह ताली बजाने वाले दर्शकों की भीड़ में जा बैठी है तभी से शायद यह परिवर्तन हुआ है। खुद की प्रतिरोपित बैसाखियां जब तक वह न उतार फेंकेगी तब तक वह ऐसे ही भीड़ में कोई रास्ता ढूंढती रहेगी और—।

वह उठ खड़ी हुई। सामने तरु नाच रही थी पूरे आत्मविश्वास के साथ, संभल-संभल कर पैर रखती, बोल पूरे करती हुई।

ठहरा हुआ सवेरा

सारा बदन पसीने से नहा गया था। अभी भी विश्वास नहीं हो रहा था कि वह सब स्वप्न था। निश्चय ही जाग्रत अवस्था-सी चेतना थी जब मैं एक किलेनुमा इमारत की छत पर खड़ा था कि आसमान लाल काला-सा होकर धुएं की गंध से भर गया था। वह गंध अभी भी नथुनों में भरी थी और मैं अन्दर फेफड़ों तक उस दमघोटू हवा को महसूस कर रहा था। नीचे, बहुत नीचे गहरी पंदकनुमा खाइयां जिन पर कीड़े-मकोड़े से असंख्य जीव रेंग रहे थे और धीरे-धीरे आपस में एक-दूसरे से गुंथते, आकार में बढ़ रहे थे। होते-होते वे भूरे चितकबरे सांपों की-सी शक्ल लेने लगे और इमारत की दीवार पर रेंगने लगे। अब तक का यह कौतुक अब सशंकित करने लगा था क्योंकि सांपों की गति धीरे-धीरे बढ़ने लगी और वे ऊपर आने की कोशिश में नीचे गिरते-पड़ते ऊपर आ रहे थे। मैंने यह देखकर आवाज दी और इधर-उधर छतों से अन्य अनेक लोग आ गए और सामूहिक रूप में सब प्रयास करने लगे उन्हें ऊपर तक आने से रोकने के लिए। लेकिन वे तो न जाने किस धातु के बने थे कि उनकी गति निर्बाध रूप से चालू थी और उन पर किसी प्रकार के प्रहारों का असर नहीं हो रहा था। अंत में वे मुंडेर भी पार कर गए और छत पर रेंगने लगे। अब भागें तो कहां—सब स्तंभित जड़ हो गए। लाख प्रयत्न करने के बावजूद एक उंगली भी नहीं हिल पायी मेरी। वे सारे बदन में रेंग रहे थे। एकाएक गला कसता-सा मालूम दिया—शायद कोई गले के चारों ओर लिपट रहा था। चेतना

लगा दिया गया था मैं। वहा चमर-टोला अपनी सपूर्ण दुनिया थी और उसकी हद से बाहर बाकी गांव ही विदेश था। राजा साहब की हुकूमत थी वहा पर और हम सबके लिए वही सब कुछ और अन्तिम था। सारा गांव उनकी प्रजा थी और हम प्रजा नही सेवक थे जन्म-जन्मातर के सेवक। हमारा धर्म सेवा और अपने मालिकों द्वारा प्राप्त शहादत हमारा मोक्ष था। राजा साहब साक्षात् स्वर्ग जैसी हवेली मे रहते जहा का वैभव और हाल-चाल सुन-सुन कर दिमाग चकराने लगता कि क्या यह सब इस पृथ्वी पर संभव है ? एक बार गाव के मेले में तमाशा आया था, जहा ऐसी-ऐसी तस्वीर सजी थी कि बस—पूरा परी लोक मालूम होता था। साथ था घीसू चाचा, देखता हुआ बोला—"ऐ स्याला, पूरा इदर लोक बनाए दिया है, बिल्कुल हवेली मालूम देत है राजा साहेब की—"

हालांकि गाव के सभी लोग सुखी न थे लेकिन फर्क ये था कि वे आदमी थे और हम तो तब आदमी भी न थे, इसलिए हम लोगों के दुःख भी एक जैसे नही हो सकते थे। पंडित सुदरलाल की जवान बेटी को राजा साहब के आदमी सरे-आम उठा ले गए और तीन दिन बाद उसकी तार-तार हुई लाश पोखर के पास मिली। पंडित जी की वह इकलौती लाडली बेटी—वे सदमे से पागल जैसे हो गए। फकीरा, अपना मोथरा चाकू तीन दिन तक तेज करता रहा। कहता था—बामन देवता का अपमान भयो है—पिरलय होई पिरलय—और एक रात चौहद्दी से बाहर निकल गया वह पंडित जी के घर की ओर। फिर एक जोर का हंगामा आधी रात को पडित जी के चीखने की आवाज पूरे गाव मे गूज रही थी—

"तैंने चमार के बच्चे—हिम्मत कैसे करी मेरे घर में भीतर घुसने की।" उनकी गुहार सुनकर धर्म रक्षा के नाम पर सभी जुट गये थे।

"ऐ शूद्र अब ये हिम्मत। घर अपवित्र करेगा।"

"साले, चमार की औलाद, राजा के खिलाफ चाकू उठाएगा।"

"अरे पंडित ने पकड लिया मौके से, कहता था बदला लेगा।"

"अरे भइया, अब यही जमाना है। इन कमजातों की यह हिम्मत कि बगावत करेंगे, भड़कायेंगे लोगो को।"

—और पिरलय को टालने के वास्ते फकीरा गया काम से हमेशा के

डूबती-सी मालूम दी और अंदर छा गए गहरे कालेपन में अंगार से चटखने लगे। मैंने हाथ-पैर छटपटाते हुए उस घेरे को गले से अलग करने की कोशिश की, लेकिन वह और कस गया था।

"अरे—कोई है ? आओ-हटाओ इसे जल्दी—" एक चीख-सी निकली मेरे गले से।

बहुत देर बाद सक्षम हो पाता हूं आंख खोलने में। अभी भी भरोसा नहीं हुआ कि मैं अपने कमरे में ही हूं, पूर्णतया सुरक्षित। मैंने फिर आंखें बन्द कर लीं और सोचना शुरू किया कि कहां हूं, किस स्थिति में हूं। लेकिन बदन पर लिजलिजी सरसराहट का अहसास अभी भी ताजा था। हाथ-पैर झाड़ता हुआ मैं उठा। प्यास के मारे गले में कांटे से उग आये थे। डगमगाते कदमों से उठ पानी पिया। दो घूंट पिये थे कि अचानक ख्याल कौंध गया—कहीं किसी ने इस पानी में तो—और फिर एकबारगी सारा बदन सिहर उठा। थोड़ी देर गिलास को इधर-उधर घुमाकर देखता रहा और न जाने क्यों, दे मारा उसे दीवार पर और सन्नाटे को भेदती हुई तीखी झनझनाहट बिखर गई कमरे में। बाहर झांककर देखा तो बाडीगार्ड कमरे की ओर बढ़ रहा था और थोड़ी दूर पर चौकीदार बैठा था। मैं आश्वस्त हुआ। एक मोटी-सी गाली निकल गई मेरे मुंह से, जो अब यदा-कदा अकेले में ही निकलती है लेकिन बचपन में यह एक स्वाभाविक लहजा था बोलचाल का।

मैं फिर बिस्तर पर लेट गया। आदमी कभी-कभी क्या से क्या हो जाता है। अचानक कितना कुछ मिल जाता है उसे जिसकी कभी कल्पना भी संभव न हो।

गटर की-सी सड़ांध और भिनभिनाहट में जो तब सहज स्वाभाविक थी लेकिन आज मालूम देता है कि जिंदगी का नर्क हो था वह जहां मैं पैदा हुआ। एक बार बाबा से पूछा था कि हम लोग क्यों नहीं साफ बस्ती में रहते—तो उन्होंने बिना विचलित हुए, जमीन पर दीख पड़ा बीड़ी का टुर्रा झाड़ कर कान पर अटका लिया था और बोले—पिछले पापन को अब न भुगतेंगे तो क्या करेंगे—और हाथ पकड़कर आगे बढ़ गए थे। होश सभालते ही कूड़ा-कचरा खंगालने और गोबर के ढेर से दाने बीनने के काम पर

लगा दिया गया था मैं। वहां चमर-टोला अपनी संपूर्ण दुनिया थी और उसकी हद से बाहर बाकी गांव ही विदेश था। राजा साहब की हुकूमत थी वहां पर और हम सबके लिए वही सब कुछ और अन्तिम था। सारा गांव उनकी प्रजा थी और हम प्रजा नहीं सेवक थे जन्म-जन्मांतर के सेवक। हमारा धर्म सेवा और अपने मालिकों द्वारा प्राप्त शहादत हमारा मोक्ष था। राजा साहब साक्षात् स्वर्ग जैसी हवेली में रहते जहां का वैभव और हाल-चाल सुन-सुन कर दिमाग चकराने लगता कि क्या यह सब इस पृथ्वी पर संभव है? एक बार गांव के मेले में तमाशा आया था, जहां ऐसी-ऐसी तस्वीर सजी थी कि बस—पूरा परी लोक मालूम होता था। साथ था घीसू चाचा, देखता हुआ बोला—"ऐ स्याला, पूरा इंदर लोक बनाए दिया है, बिल्कुल हवेली मालूम देत है राजा साहेब की—"

हालांकि गांव के सभी लोग सुखी न थे लेकिन फर्क ये था कि वे आदमी थे और हम तो तब आदमी भी न थे, इसलिए हम लोगों के दु.ख भी एक जैसे नहीं हो सकते थे। पंडित सुंदरलाल की जवान बेटी को राजा साहब के आदमी सरे-आम उठा ले गए और तीन दिन बाद उसकी तार-तार हुई लाश पोखर के पास मिली। पंडित जी की वह इकलौती लाडली बेटी—वे सदमे से पागल जैसे हो गए। फकीरा, अपना भोथरा चाकू तीन दिन तक तेज करता रहा। कहता था—बामन देवता का अपमान भयो है—पिरलय होई पिरलय—और एक रात चौहद्दी से बाहर निकल गया वह पंडित जी के घर की ओर। फिर एक जोर का हंगामा आधी रात को पंडित जी के चीखने की आवाज पूरे गांव में गूंज रही थी—

"तैंने चमार के बच्चे—हिम्मत कैसे करी मेरे घर मे भीतर घुसने की।" उनकी गुहार सुनकर धर्म रक्षा के नाम पर सभी जुट गये थे।

"ऐ शूद्र अब ये हिम्मत। घर अपवित्र करेगा।"

"साले, चमार की औलाद, राजा के खिलाफ चाकू उठाएगा।"

"अरे पंडित ने पकड़ लिया मौके से, कहता था बदला लेगा।"

"अरे भइया, अब यही जमाना है। इन कमजातों की यह हिम्मत कि बगावत करेंगे, भड़कायेंगे लोगों को।"

—और पिरलय को टालने के वास्ते फकीरा गया काम से हमेशा के

लिए।

सो वह था हमारा संसार, ठीक सूअर के बाड़े जैसा जिसे चारों ओर से बड़े-बड़े दरख्तों से घेर कटीले तारों में बंद किया हो। जहां जरूरत पड़ने पर वे एक-एक कर कटते रहें और जिनकी आवाज भी उस घेरे तक ही सीमित रहती हो। हमारा ख्याल था कि कुल हवा, सूरज और आकाश उतना ही है जितना इस बंद घेरे में आता है। मैंने अपने बाबा को देखा था, बाप को देखा था, चाचा-ताऊ, बड़े भाई को देखा था और अपनी मां को, दो जवान बहनों को देखा था, उनके जीने को, तिल-तिल कर मरने को, क्षत-विक्षत नियति को देखा था—मैं भी तैयार था अपनी बारी के लिए।

धीरे-धीरे क्या हुआ कि लगा हवाएं जोर से चलने लगी है। इन हवाओं के तेज होने के साथ ही हमारे चारों ओर दरख्त हिलना शुरू हो गए। हम सब अचरज में भर देख रहे थे कि हमें राजा साहब और उनके कारिंदे बदहवास से घूमते नजर आये। वे कोशिश कर रहे थे कि इन तेज हवाओं का चलना किसी तरह रुक जाए, लेकिन बढ़ती ही गई, तेज होती गई और दरख्त टूट-टूट कर गिरने लगे।

दूssssर, बहुत दूर, एक शोर-सा सुनाई दे रहा था। इस बीच कांटे की बाड़ भी थोड़ा इधर-उधर हट गई थी और मैं मौका देख उस घेरे से भाग निकला। शायद पहली बार एक असीमित खुला आकाश मैंने अपने चारों ओर देखा, ताजा हवा अपने भीतर महसूस की।

शोर अब धीरे-धीरे पास आ रहा था और अब एक रंग-बिरंगा तरह-तरह के लोगों से भरा जुलूस दिखाई देने लगा। वे चिल्ला रहे थे, कुछ नारे लगा रहे थे। वे शायद बाहर के लोगों का नहीं, अपना राज चाहते थे। मुझे फौरन अपने राजा साहब का ख्याल हो आया और मैं एकबारगी सिहर उठा। तब निश्चय ही ये बाहर के लोग और ज्यादा बुरे होंगे और मैं भी भीड़ के साथ हो लिया।

और इस तरह अनेकों दरख्त टूट-टूट कर गिरते रहे, दीवारें ढहती रहीं, कांटों के तार सिमटते रहे, स्तंभित अनजान लोग, पढ़े-लिखे समझदार लोग गिर पड़े, स्वप्नों में भरे लोग आकर मिलते रहे, साथ होते रहे और जुलूस बड़ा, बहुत बड़ा होता गया, आगे बढ़ता गया।

जुलूस जब विदेशी महाराजा के द्वार पर पहुंच चुका था और द्वार पर खड़े गार्ड एटेंशन की मुद्रा ले चुके थे।

वे बाहर आये। उनका चेहरा तना और आंखें शायद अनेक रातों के जागरण की वजह से लाल थीं। अपार जनसमूह की ओर देख उन्होंने एक नजर अपने मुस्तैद सिपाहियों पर डाली और फिर जुलूस के लीडरों को देख आश्वस्त हुए और उन्हें हाथ पकड़ कर वे अंदर ले गए, शायद उन्हें कुछ समझाने, अपने फैसले बताने। काफी देर बाद वे सभी प्रसन्न मुद्रा में बाहर आए। जुलूस के नेताओं ने प्रसन्नतापूर्वक अपने राज का ऐलान करते हुए जाने वालों का कहा-सुना माफ करने को कहा, ताकि आगे भी दोस्ती बनी रहे—संबंध कायम रहे।

और अब सबका राज—जनता का राज था। लोग खुशियों से भर झूमने लगे। बहुत से लोगों के छोटे-छोटे से घर इस आंधी के दौरान तबाह हो गए थे। बहुत से जिनके लोग इस जुलूस-यात्रा में शहीद हो गए थे, हंसने लगे—सदियों से गुलाम, दड़बों में रहने वाले सपने सजाने लगे—अब अंधेरा दूर हो जाएगा, कालापन खत्म होगा, सबको रोशनी मिलेगी—हवा मिलेगी, अब राजा साहब नहीं होंगे, उनके कारिंदे, मातहत, सैनिक कोई नहीं होगा—कैसी होगी तब जिंदगी?

इस जनता के राज में पुराने तख्ते-ताऊस न थे, वरन् कुर्सियां थीं, बैठकर काम करने के लिए—सुनहरी मखमली ऊंची कुर्सियां। कुछ मुझ जैसे लोगों को भी शामिल किया गया। आखिर था न वह सबका राज।

और फिर, सब कुछ पहले जैसा ही चलने लगा। कुछ इमारतों के, सड़कों के नाम बदले गए। कुछ और नए भवन भी बनाए हमने, पहले जैसे ही भव्य लेकिन नए स्वदेशी नामों से और बस बने-बनाए रास्ते थे, लक्ष्य थे, हमें सिर्फ उन्हें आगे बढ़ाना था। वे सचमुच हमारा काम बहुत आसान कर गए थे।

पहले दिन उस भव्य और सजे कमरे में जाते डर-सा लगा। नीचे मोटा खूबसूरत कालीन कि पैर धंस जाएं चलने में। समझ में न आया कि जूता

पहन कर कमरे में घुसना ठीक है कि नहीं। कुर्सी इतनी गुलगुली, आराम-देह—लगा अभी कोई आएगा लाल-लाल आंखें किए और धकलिया कर बाहर कर देगा। अचानक आंखों में कौंध गई बचपन की घटना जब बंदर का तमाशा देखने की धुन में गांव के बड़े ठाकुर के आंगन में घुसता ही चला गया था मैं। तब अपनी स्थिति एवं व्यवहार के औचित्य से बेखबर शायद बच्चों की भीड़ के बीच से तमाशे के निकट जाने की कोशिश कर रहा था कि नीम के नीचे चारपाई पर बैठी पंखा झलती ठकुरानी ने देख लिया और उठकर जोर से मुझे ऐसा धक्का दिया कि सीधे मैं बाहर आ गिरा। एक तो नंगा बदन और तिस पर जेठ की दुपहरी की तपती सड़क। मैं बिलबिला कर रह गया था। अंदर ठकुरानी के सफल निशाने की तारीफ और ठहाकों के बीच अपमान और शरीर की जलन ने सचमुच मेरा दर्जा उस समय के नन्हे दिमाग में पूरी तरह से स्पष्ट कर दिया था।

लेकिन आज यहां हाल उल्टा ही था। दूसरे लोग हाथ जोड़े खड़े थे—खुशामदें करते, जय बोलते। अजीब हल्का-सा होकर दिमाग मानो उड़ रहा था। घटनाएं, व्यक्ति सब सरकते से मालूम दे रहे थे। मेरे चारों ओर अब ढेरों लोग थे—अनगिनत मुखौटे-खनखनाहटें-खिलखिलाहटें, उनके पीछे भीड़, तरह-तरह के लोगों की, आशा टंगे दीयों की, मुस्कराहट की कोशिश की। बहुत कुछ था—अथाह, भीषण। आश्चर्य! हमारी छाया से भी बचने वाले अब कैसे मेरे साथ थे, उठ-बैठ, खा-पी रहे थे और मैं, जूठन को लालच में ड्योढ़ी के बाहर सिमटा नहीं बैठा था—वरन् इन सबसे ऊपर हाथ में दंड धारण किए था। मेरी एक-एक चोट अब फिर उभर रही थी। मैंने पीठ, बांहों, मुंह पर हाथ फिराया—पुरानी नीलें, सूजन और गूमड़ों के साथ अनेकों भयावह चेहरे फिर तैर आए, लेकिन अब दृश्य बदल चुका था।

एक बार अपने इस नए तेवर से मैं स्वयं भयभीत हो गया। कहीं ये सब छिन न जाएं? मैंने झांक कर दूसरे अन्य साथियों के कमरों में देखा—और मैं आश्वस्त हो चला।

लेकिन अब एक नशा-सा हावी हो गया था मुझ पर जो अब हटाए न हटता। बेतहाशा पीकर डुबा दिया अपने को समुद्र में, लेकिन यह नया नशा

न टूटता था सो न टूटा।

पिछली बार गांव गया मैं अपने। विगत स्मृतियों के खंडहर देखने की उत्सुकता मुझे उस ओर खींच ले गई जहां कटीले तारों की बाड़ तो हट गई थी लेकिन पुराने दड़बे अभी कायम थे। लड़ाइया भी जारी थी, अपने आप को जिंदा रखने के लिए। मेरे लोग लपके हुए मेरे पास आए, दौड़ते हुए—'बबुआ तुम भुलाय दियो हम लोगन को। तुम तो चढ़ी गये अकास, जब हमहूं कन आदमी बनाय दियो—' वे पुरानी पहचान छिपाए झुर्रियों वाले चेहरे, धूल-पसीने से और बदबू से लथपथ थे।

'जरा दूर हट कर बात करो। ठीक है—ठीक है—हम देखेंगे—आपने हमें चुना है—अपना प्रतिनिधि बनाया है—हम देखेंगे कि आपके लिए क्या कर सकते हैं—।' और मैं लौट आया। मैं उन्हे जनतंत्र और समाजवाद के बारे में समझाना चाहता था, आज दुनिया मे क्या-क्या नया हो रहा है, बताना चाहता था, लेकिन वे तो अभी भी अपनी रोजी-रोटी के ही चक्करों मे फंसे थे। पेट भरना अभी भी उनकी सबसे बड़ी समस्या थी। मैं निराश हो गया उनकी ओर से।

अब इस इलाके की ही बात है। मैं कल पहुंचा यहां दौरे के लिए क्योंकि शायद यहां भीषण अकाल की स्थिति है। रात यहां के प्रतिष्ठित एवं भद्र लोगों के साथ विचार-विमर्श कर रहा था कि कैसे इस संकट को टाला जाए कि पता चला बाहर कुछ लोग खड़े हैं मुझसे मिलने के लिए। मैंने कलक्टर से कहलाया कि उन्ही लोगों के बारे मे हम सलाह-मशविरा कर रहे हैं—लेकिन वे पीछे पड़ गए कि नही, मुझसे ही बात करके जाएंगे—मानो कलक्टर तो बेवकूफ है, उनकी बात नही समझता।

खैर बाहर आया तो सूखे-सिमटे, काले-कलूटे, अधनंगे लोगों का हुजूम ढेरों सींक से हाथ-पैरों के बीच ढोलक से लटके पेट लिये मरघिल्ले नंग-धड़ंग बच्चे। एक स्थानीय शहरी युवक जो उनका नेता था, जोर-जोर से चिल्लाकर बोलने लगा। मैंने कहा कि धीरे बोलो भाई, हम तब भी तुम्हारी बात सुनेंगे, तो बोला—आप इन्हे देखिए, इनसे पूछिए क्या हालत है, भीतर बैठे लोग क्या जानते हैं अकाल और भूख के बारे मे। मुझे लगा यह नेता ही झगड़े की जड़ है—भड़काता है इन लोगों को—ऐसे लोगों को सजा

अवश्य मिलनी चाहिए और फौरन मैं अंदर आ गया और सबसे पहले उस युवक को संदिग्ध करार कर उसकी गतिविधियों पर नजर रखने के आदेश दिए लेकिन इस शिवजी की-सी बरात के लोगों को देखकर मेरा जी सचमुच खराब हो गया था।

अभी फिर आंख लग रही थी। वे हुजूम के लोग अभी भी शायद जेहन में थे सो ऐसा लगा कि नींद आते ही फिर वे छायाएं आपस में एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर मेरे चारों ओर नाचने लगेंगी—और शायद फिर मेरा दिमाग बहक रहा है। मैंने उठकर खिड़की के पर्दे एक ओर सरकाए और खिड़की खोल ली—सोचा, ठंडी-ताजा हवा अच्छी लगेगी। बाहर घना अंधेरा था और एक अजीब मुर्दा सन्नाटा फैला था चारों ओर। मेरा जी किया कि चुपचाप पड़ा रहूं, बिना किसी हरकत, किसी हलचल के। कमरे में और मन-दिमाग पर फैली यह निष्क्रियता चलती रहे, हमेशा-हमेशा अनन्त तक! घड़ी पर नजर डाली और एक हल्की-सी खुशी की लहर अंदर दौड़ गई—सबेरा होने में अभी समय बाकी था।

मुक्ति

राजे मन-ही-मन पछता रहा था अपनी बेवकूफी पर। पांच बज रहे थे, उसने हिसाब लगाया कि सात बजे तक पहुंच सकता है दिल्ली। कभी-कभी भावुकता में पड़ कर वह आगा-पीछा नहीं देखता है। अब ठीक था, माया उसे अलीगढ़ में मिल गई थी तो ऐसा क्या था! जाहिर-सी बात है, वह तो कहती ही कि आओ, बहुत दिनों बाद मिले हो, घर चलो! तभी मना कर देता वह, तो ठीक था। लेकिन क्या किया जाए, लिहाज करना ही पड़ता है कभी-कभी। हां, इससे यह साफ जाहिर था कि माया भूली नहीं थी उसे अब तक।

अलीगढ़ उसे आना पड़ा था। माननीय भानुप्रताप जी अपने एक दिन के दौरे पर अलीगढ़ आए थे और यहीं उन्होंने उसे मिलने के लिए समय दिया था। आज ही उसे लौटना भी जरूरी था क्योंकि शाम साढ़े सात बजे मिस्टर राम को डिनर पर इनवाइट कर चुका था। उस कमबख्त ने भी उसे छका मारा है। एक महीने से आगे-पीछे दौड़ रहा है वह उसके। खुशामद में कोई कमी नहीं छोड़ी। तीन-चार बार तो ओबेराय में दावत खिला चुका है उसे। हरामी, शराब की तो ऐसी डिमांड करता है मानो हमेशा से इंपोर्टेड ही पीता रहा हो। खैर, आज आखिरी बार है, सारा मामला तय हो जाएगा। उस प्रोजेक्ट का ठेका उसे मिल गया तो चार-पांच लाख का बंदोबस्त तो हो जाएगा।

उसने एक्सीलेटर दबाया। अब इस गाड़ी की ही बात है। यह होती है

आदमी-आदमी की बात। नीला इस गाड़ी को देखकर नाक-भौं सिकोड़ने लगती है। उसे जल्दी ही मर्सीडीज बेंज चाहिए। कहती है गाड़ी तो ऐसी हो कि बस फिसले सड़क पर मछली की तरह। सचमुच कविता करने लगती है कभी-कभी वह। कार की तुलना तैरती मछली से; हंसी आई उसे। नीला को दरअसल डैडी की जैसी गाड़ी चाहिए, लेकिन डैडी के नहीं खुद अपने पैसे से। बहुत स्वाभिमानी है वह, किसी का अहसान नहीं चाहती। भगवान ने चाहा तो चार-छः महीने में जरूर ले लेगा वह उसके लिए नई, चमकती, हवा में तैरती चिकनी मछली !

माया कैसी आंख फाड़ कर देख रही थी उसकी गाड़ी को। थोड़ा कौतुक और उपहास मिला-जुला था उसकी नजरों में। राजे को कुछ तरस-सा ही आया था उस पर।

—क्यों, मुझे देख रही हो या गाड़ी को, स्नेहसिक्त होकर कहा उसने !

—तुम्हें तो बहुत पहले से देखा है। अब क्या कुछ और बचा है ?

कुछ सकपका-सा गया वह। माया को एक बार भरपूर निगाहों से देखा उसने। वह बात, वह पुरानी कशिश—कुछ नहीं था अब उसमें। फिर उसे क्या हक है ऐसी बात करने का—

—अच्छा अब चलता हू, जल्दी लौटना है।

—चले जाना, ऐसी भी क्या जल्दी है ! घर तक नहीं चलोगे !

—घर ! कहां है ? और कौन-कौन हैं ?

—कोई नहीं—अकेले रहती हूं।

उसने सोचा क्या हर्ज है थोड़ी देर के लिए—। कमरा उसका वैसा ही था जैसा अकेली रहने वाली नौकरी-पेशा लड़कियों का होता है। एक कोने में मुरादाबादी फूलदान में लगे लाल गुलाब जरूर महक रहे थे वरना बाकी चारों ओर कमरा साफ-सुथरा और सलीके से व्यवस्थित होने के बावजूद एक सुस्ती और उदासी का रंग लिये हुए था।

—बैठो ! चाय तो पियोगे ना !

—हां, पी लूंगा लेकिन जरा···!

उसे अपने स्वर में अनायास आ गए अधिकार का स्वर उचित लगा। दूसरे कमरे में स्टोव जलने की आवाज आने लगी। वह चारपाई पर बैठा

मैगजीन उलटता-पुलटता रहा।

—क्या कर रहे हो आजकल। वह चाय का प्याला लिये खड़ी थी।

—बस, अपना ही काम कर रहा हूं इधर-उधर। घूट लिया उसने चाय का।

माया सामने ही बैठ गई थी कुर्सी पर! उसे लगा, नहीं—कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है उसमें! अभी भी आकर्षक है वह। सलोनापन चेहरे का बरकरार है। चलो ठीक है, नौकरी कर रही है, थोड़ा-बहुत पैसा इकट्ठा कर लेगी, हो जाएगी शादी भी। कौन उसके नाम पर बैठी रहेगी जिंदगी भर।

—क्या सोचने में डूब गए?

— कुछ नहीं, बस यूं ही। मुस्करा दिया वह।

—और—शादी हो गई?

—हां, तभी हो गई थी।

—कैसी है बीवी?

उसे माया का यह टोन थोड़ा अटपटा लगा।

—नीला! बहुत अच्छी है, स्वीट गर्ल। मिलाऊंगा कभी तुम्हें। उसके डैडी का बिजनेस है, एक्सपोर्ट-इंपोर्ट का। अकेली लड़की है उनकी। वह माया को एक साथ नीला के बारे में बहुत-कुछ बता देना चाहता था।

वह भीतर से कुछ सिमट-सी गई, हालांकि उसके चेहरे की मुस्कान ज्यादा फैल गई थी।

—अच्छा चलूंगा। प्याला रख दिया उसने। फिर कभी मुलाकात होगी। उसने हौले से उसका हाथ दबा दिया और बाहर आ गया उसके साथ!

—ये गाड़ी नई ली है क्या?

—हां, नई ही समझो। नीला दो साल से ज्यादा एक गाड़ी रखने ही नहीं देती। हंसा वह।

—अच्छा। उसने हाथ हिलाया और चल पड़ा। वक्त होता तो दो-तीन घंटे वह माया के साथ गुजार सकता था। आज इतना वक्त तो भानुप्रताप जी के साथ खर्च हो गया लेकिन वह भी जरूरी था वरना वह

राय का बच्चा—कोई भरोसा नहीं। आखिरी वक्त फिर डॉज दे जाता! उसने गाड़ी तेज कर दी! सात बजे तक वह अवश्य घर पहुंच जाएगा और बाकी इंतजाम तो नीला ने कर ही लिया होगा।

रामपाल छोटे ज्ञान का हाथ पकड़े चला आ रहा था! ज्ञान आज बहुत खुश था। उसके बाबू को आज सवेरे बाहर जाना था। रामपाल का चचेरा भाई शहर के अस्पताल में दाखिल था। कल शाम जब चाचा आए तभी उसे मालूम हुआ। उसने सोचा सवेरे ही ठंडे-ठंडे में निकल जाएगा वह। थोड़ा कुछ जरूरी सामान भी लाना था उसे शहर से, सो दोनों ही काम हो जायेंगे।

ज्ञान एक जमाने से शहर जाने के लिए कह रहा था। हमेशा उसे बहला दिया जाता कि थोड़ा और बड़े हो जाओगे तब चलेंगे। आज सवेरे जब उसे मालूम हुआ कि बाबू शहर जा रहे हैं तो वह फौरन फैल गया और चीख-चीख कर घर आसमान पर उठा लिया। उसकी मां ने तो कस कर एक धौल भी जमा दिया उसकी पीठ पर लेकिन उसका स्वर नीचा नहीं हुआ। खैर, जाने क्या सोच कर रामपाल उसे अपने साथ ले चलने के लिए राजी हो गया। फौरन उसको तैयार किया गया। अम्मा ने नहला कर उसे नया निकर और कमीज पहना दिया जो अभी पिछले महीने उसके मामा की शादी में उसके लिए बना था। आंखों में काजल लगाकर अम्मा ने छोटा-सा बिंदा लगा दिया सिर के पास। ज्ञानू को यह काला बिंदा बहुत बुरा लगता है लेकिन अम्मा तो बस उसे दो साल का लल्लू ही समझती है और वहां गांव में सब चिढ़ाते हैं उसे। लेकिन उस समय शहर जाने की खुशी और उत्तेजना में शायद उसे ध्यान भी नहीं रहा इसका।

सारा दिन घूमने और मौज करने के बाद लौटते हुए बस से उतर पड़े थे दोनों लोग। बस से उतर कर करीब दो फर्लांग का रास्ता सड़क का है और फिर कच्चे से उतर खेतों-मेंतों से होते हुए करीब पौन मील पैदल चलना पड़ता है। ज्ञानू एक तो दिन भर की घुमाई से थका और फिर साथ मिली बांसुरी के ऊपर पी-पी का स्वर-संधान – धीरे-धीरे पीछे चल रहा

था। दिन ढल रहा था और कुछ हल्की-सी खुनक थी अब शाम की हवा में। रामपाल जल्दी में था, उसने पीछे मुड़कर देखा और पैर घसीटते झानू को हाथ से पकड़ कर आगे कर दिया।

—जल्दी कदम नहीं बढ़ते ?

—चल तो रा हूं अबका दौरि परूं—खीझ कर बोला वह और सचमुच उसने दौड़ना आरंभ कर दिया। लेकिन बांसुरी को उसके दोनों हाथ होंठों पर पूर्ववत् साधे रहे।

सीधी सड़क और सामने तेजी से आती कार। रामपाल ने सोचा भी नहीं था कि कार इस तेजी से इतने निकट आ जाएगी और झानू को आवाज दे जब तक वह पहुंच पाता उसे पकड़ने, गाड़ी एकदम सिर पर। झानू घबड़ा गया और हड़बड़ा कर जा टकराया गाड़ी से और सेकिंड भर में गाड़ी उसके ऊपर।

राजे ने उन्हें देख तो लिया था लेकिन उसे जरा भी अंदाज न था कि लड़का ऐसे निःशंक होकर सड़क पर टेढ़ा-मेढ़ा दौड़ना शुरू कर देगा और ब्रेक लगाते-लगाते भी वह देहाती लड़का नीचे आ ही गया। इस अप्रत्याशित दुर्घटना से राजे एकदम स्तंभित रह गया। उसको समझ में ही नहीं आया कि क्या करे कि रामपाल की गर्जना ने उसकी स्तब्धता भंग की।

—अबे निकल के आओ बाहर, तुम्हारी तो हड्डी-पसली तोड़ के धर देंगे—और सचमुच वह मानो उसका गला पकड़ने खिड़की की ओर बढ़ा ! उसकी आंखों से चिनगारियां बरस रही थीं। इस बीच तीन-चार लोग और जो इधर से गुजर रहे थे, इकट्ठे हो गए। एक आठ-दस गज दूर पहुंच गई बैलगाड़ी पर सवार लोगों ने यह माजरा देखा तो दो-तीन लड़के उसमें से कूद कर वहां आ गए। खासा मजमा इकट्ठा हो गया। कहीं और शहर के बीच होता तो शायद गांव के इन लोगों की इतनी हिम्मत न होती कि इतने अप-टू-डेट मोटर वाले साहब से मार-पीट करते लेकिन यहां उनका आक्रोश अपने स्वाभाविक उबाल पर था। वे सभी लगभग पिल में पड़े उस पर ! राजे कांप उठा। उसका भगवान ही मालिक है आज।

—अरे भाई रुको; देखने तो दो—बाहर आता हूं—पर ये गाड़ी क्यों पीट रहे हो—। उसकी समझ काम नहीं कर रही थी कि कैसे स्थिति को

संभाले। पता नही लड़के को कितनी चोट आई है।

—क्या है अब बात करो ठीक से। उसने कुछ तेज होकर कहा।

—अबे तेरी तो···मार के डाल दे इसे यही पर। बाद की बाद मे भुगतेंगे। ससुर गाड़ी मे जमीन पर पैर ही नही रहते इनके।

और सचमुच बैलगाड़ी वाले लड़कों में से एक तो भिड गया उससे। वैसे ही आज वे शहर से खिसियाए हुए लौटे थे। नुमायश मे उनके साथ की लडकियों से शहर के कालेजियट लडको ने कुछ बेहूदगी की थी। उसने जरा तेज होकर मना किया तो खीच कर दो हाथ मार दिए उसके। वे दो देहात के लडके शहर के हिप्पीनुमा बडे-बडे बाल धराए और रग-बिरगी कमीजों के साथ चौडी-चौडी जमीन छूती पैंट पहन, आधुनिक बने लडको के झुड की क्या बराबरी करते। खून का घूंट पीकर रह जाना पडा था उसे। और यहां फिर वही बेहूदगी—*न जाने अपने को क्या समझते हैं ये*—फिर दो हाथ खीचकर मारे उसने!

—अरे जाकर बालक कूं देखो, उसकी भी सुध लोगे या यूं ही झगडा करते रहोगे। एक तमाशबीन जिसे यह मारपीट पसंद नही आई, बोला।

—हां, हा, आप देखिए बच्चे को, देखिए उसे हॉस्पीटल ले चलिए, मैं···मैं तैयार हू ले जाने के लिए। क्या फायदा लडाई-झगडे से···।

—ठीक है—अरे भाई उठा बालक कू—। खाली दूध का बर्तन लटकाए घर जाता साइकिल वाला साहब की सहृदयता से सहमत होकर बोला।

—बड़े अस्पताल ही ले जाओ अब। दूसरे ने सलाह दी। यू भी आस-पास कोई डाक्टर नही था। गाव की डिस्पेंसरी में इस वक्त किसी के मिलने का प्रश्न ही नही उठता था। पच्चीस-तीस मील दूर गाजियाबाद के सरकारी अस्पताल मे ही ले जाया जा सकता था और उसके लिए राजे की मोटर की व्यावहारिकता को सभी समझ रहे थे।

अचेत झानू को रामपाल ने अपने दोनो हाथो पर उठा रखा था। उसके सिर और माथे से खून बह रहा था। सारा चेहरा खून से लाल और नई कमीज धूल और खून के रंग से मिलकर बदरंग हो रही थी। रामपाल का कलेजा मुंह को आ गया। इस वक्त अगर उसकी जान का सवाल न

होना तो वह इस सामने खड़े आदमी को यहां से जिंदा न जाने देता। उसने एक बार फिर उसे ऊपर से नीचे तक तोला और गाडी के अंदर की ओर बढ़ा। न जाने क्या सोच कर फिर वापिस आ गया। वे बैलगाडी वाले लड़के लौटने को थे।

—भैया सुनो जरा।

वे तीनों ही रुक गए।

—कौन गांव को जा रहे हो तुम ?

—अमरपुर जाएंगे।

भैया, हमारा लाखनपुर है गांव। पास के ही हो सब। जरा तुम में से कोई चलो ना साथ। एक से दो रहेंगे तो सहारा रहेगा भाई!

—रात तो लग जाएगी। फिर क्या बखत रहेगा लौटने का ?

—अब जो करो भैया—बालक की जान का मामला है। इसकी मां तो मर जाएगी उसे पता पड़ गई तो···! आंखें भर आईं उसकी।

—चले जा बिसना, उसके साथी ने कहा—सवेरे आ जइयो!

—अच्छा चलो।

राजे के जान में जान आई वरना इन जाहिल घुरों ने तो आज उसकी जान ही ले ली होती। अच्छा फजीता हुआ आज। उसने गाड़ी स्टार्ट की।

कालू रामपाल की गोद में वैसे ही निश्चल पड़ा था। खून कनपटी और माथे पर जम गया था और सिर के बाल चिपक गए थे। रामपाल ने हौले-हौले कपड़े से उसका चेहरा पोंछ दिया! उसकी सांस धीरे-धीरे चल रही थी। उसने उसकी धड़कन सुनने की कोशिश की, वह इतनी धीमी थी कि उसे डर लगने लगा कि कहीं खत्म न हो गया हो।

—बाबू साहेब, गाजियाबाद कितनी देर में पहुंच जाएंगे हम ?

—अभी पहुंच जाएंगे, आधा-पौन घंटे में।

—जल्दी करो साहब इसका तो सास न जाने कैसा हो रहा है!

उसके साथ के लड़के ने उसका हाथ दबाकर उसे तसल्ली दी। वह चुप हो गया।

राजे के माथे पर मानो खून का दबाव बढ़ गया हो।···वह निस्तब्ध मशीन की तरह गाड़ी चला रहा था। रामपाल के 'जल्दी करो साहब' की

सँभाले। पता नहीं लड़के को कितनी चोट आई है।

— क्या है अब बात करो ठीक से। उसने कुछ तेज होकर कहा।

—अबे तेरी तो···मार के डाल दे इसे यहीं पर। बाद की बाद में भुगतेंगे। ससुर गाडी में जमीन पर पैर ही नहीं रहते इनके।

और सचमुच बैलगाड़ी वाले लड़कों में से एक तो भिड़ गया उससे। वैसे ही आज वे शहर से खिसियाए हुए लौटे थे। नुमायश में उनके साथ की लड़कियों से शहर के कालेजियट लड़कों ने कुछ बेहूदगी की थी। उसने जरा तेज होकर मना किया तो खींच कर दो हाथ मार दिए उसके। वे दो देहात के लड़के शहर के हिप्पीनुमा बड़े-बड़े बाल धराए और रंग-बिरंगी कमीजों के साथ चौड़ी-चौड़ी जमीन छूती पैंट पहने, आधुनिक बने लड़कों के झुंड की क्या बराबरी करते। खून का घूंट पीकर रह जाना पड़ा था उसे। और यहां फिर वही बेहूदगी—न जाने अपने को क्या समझते हैं ये—फिर दो हाथ खींचकर मारे उसने !

—अरे जाकर बालक कू देखो, उसकी भी सुध लोगे या यूं ही झगड़ा करते रहोगे। एक तमाशबीन जिसे यह मारपीट पसंद नहीं आई, बोला।

—हां, हां, आप देखिए बच्चे को, देखिए उसे हॉस्पीटल ले चलिए, मैं···मैं तैयार हूं ले जाने के लिए। क्या फायदा लड़ाई-झगड़े से···।

—ठीक है—अरे भाई उठा बालक कू—। खाली दूध का बर्तन लटकाए घर जाता साइकिल वाला साहब की सहृदयता से सहमत होकर बोला।

—बड़े अस्पताल ही ले जाओ अब। दूसरे ने सलाह दी। यूं भी आस-पास कोई डाक्टर नहीं था। गांव की डिस्पेंसरी में इस वक्त किसी के मिलने का प्रश्न ही नहीं उठता था। पच्चीस-तीस मील दूर गाजियाबाद के सरकारी अस्पताल में ही ले जाया जा सकता था और उसके लिए राजे की मोटर की व्यावहारिकता को सभी समझ रहे थे।

अचेत शानू को रामपाल ने अपने दोनों हाथों पर उठा रखा था। उसके सिर और माथे से खून बह रहा था। सारा चेहरा खून से लाल और नई कमीज धूल और खून के रंग से मिलकर बदरंग हो रही थी। रामपाल

होता तो वह इस सामने खडे आदमी को यहां से जिंदा न जाने देता। उसने एक बार फिर उसे ऊपर से नीचे तक तोला और गाडी के अंदर की ओर बढ़ा। न जाने क्या सोच कर फिर वापिस आ गया। वे बैलगाडी वाले लड़के लौटने को थे।

—भैया सुनो जरा।

वे तीनों ही रुक गए।

—कौन गाव को जा रहे हो तुम?

—अमरपुर जाएंगे।

भैया, हमारा लाखनपुर है गाव। पास के ही हो तब। जरा तुम में से कोई चलो ना साथ। एक से दो रहेंगे तो सहारा रहेगा भाई!

—रात तो लग जाएगी। फिर क्या बखत रहेगा लौटने का?

—अब जो करो भैया—बालक की जान का मामला है। इसकी मां तो मर जाएगी उसे पता पड़ गई तो···! आखें भर आईं उसकी।

—चले जा बिसना, उसके साथी ने कहा—सवेरे आ जइयो!

—अच्छा चलो।

राजे के जान मे जान आई वरना इन जाहिल धूर्तों ने तो आज उसकी जान ही ले ली होती। अच्छा फजीता हुआ आज। उसने गाड़ी स्टार्ट की।

शानू रामपाल की गोद में वैसे ही निश्चल पड़ा था। खून कनपटी और माथे पर जम गया था और सिर के बाल चिपक गए थे। रामपाल ने हौले-हौले कपडे से उसका चेहरा पोंछ दिया। उसकी सांस धीरे-धीरे चल रही थी। उसने उसकी धड़कन सुनने की कोशिश की, वह इतनी धीमी थी कि उसे डर लगने लगा कि कहीं खत्म न हो गया हो।

—बाबू साहेब, गाजियाबाद कितनी देर में पहुंच जाएंगे हम?

—अभी पहुंच जाएंगे, आधा-पौन घंटे में।

—जल्दी करो साहब इसका तो सांस न जाने कैसा हो रहा है!

उसके साथ के लड़के ने उसका हाथ दबाकर उसे तसल्ली दी। वह चुप हो गया।

राजे के माथे पर मानो खून का दबाव बढ़ गया हो। वह निस्तब्ध मशीन की तरह गाडी चला रहा था। रामपाल के 'जल्दी करो साहब' की

खुरच से उसका गुस्सा मानो रिसता हुआ बाहर आ गया हो। उसके दिल ने चाहा कि इन सब को पीछे से धक्का मारकर निकाल बाहर करे। बदमाश कहीं के, बच्चों को सभालते नहीं—परेशान करते हैं। उस पर फिर रौब देखो—जल्दी चलो—जैसे इनके बाप की गाड़ी हो, वह होंठ काटकर रह गया। वे अभी भी दो थे। यह गाव वाले सचमुच बदमाश ही नहीं, धूर्त भी होते हैं। कैसा बिठा लिया साथ मे दूसरे को भी। मैं भी बताऊंगा तुम्हें—।

—क्यो, क्या नाम है तुम्हारा ?

....

—हू ! नाम क्या है भई तुम्हारा ?

—रामपाल !

—अच्छा—क्या करते हो ?

....

—खेती करते होगे ! क्यो ?

—हा !

रामपाल का बिल्कुल दिल नहीं चाह रहा था कि वह कुछ भी बोले। *उसके पंख होते तो वह फौरन पहुचता शानू को लेकर अस्पताल !*

—साहब, मेरा जी बड़ा खराब हो रहा है। जरा जल्दी करो ना !

—अरे भाई, देखो कितनी तेज चला रहा हू। मुझे भी फिकर है, मुझे भी जल्दी है—।

और सचमुच उसने स्पीड तेज कर दी।

अंधेरा अब तक घिर आया था। दूर—शहर की बत्तिया झिलमिलाने लगी थी। सुनसान निर्जन सड़क और गाडी की तेज रफ्तार—धक्के के साथ रुक गई।

—क्या हुआ ! रोक क्यों दी ? अभी तो दूर है शहर !

—जरा एक सिगरेट जला लूं—बस एक मिनट।

—राजें ने इतमीनान से अपना सिगरेट केस निकाला, सिगरेट सुलगाई कुछ ख्याल आया, पीछे मुड़कर बोला वह—रामपाल, सिगरेट ?

रामपाल ने सिर हिलाकर मना कर दिया। राजें ने देखा, सात बजने

जा रहे थे। क्या करे, गाजियाबाद मे ही फोन कर दे नीला को ? नहीं, वह वास्टर्ड राय फिर हाथ नही आएगा। न मालूम क्या मतलब लगाए। पूरे पांच लाख का मामला है। वह मौका कैसे निकल जाने दे हाथ मे—उसने एक बार फिर पीछे देखा। रामपाल की भावशून्य निगाहें एकटक सामने कहीं बहुत दूर जमी हुई थीं। वह साथ का लड़का बगल मे बैठा उनींदा-सा हो रहा था।

उसने इंजन स्टार्ट किया, गाड़ी नही चली। दो-एक मिनट इधर-उधर करता रहा, फिर स्टार्ट की गाड़ी, लेकिन वह फिर नही चली।

—क्या हुआ ? रामपाल ने पूछा।

—धक्का लगाओ भई जरा तुम दोनों। न मालूम इंजन क्यों नहीं स्टार्ट हो रहा है।

रामपाल ने विसना की ओर देखा।

—चलो भाई, उसने कंधा हिलाया उसका और बहुत संभल कर शानू को सीट पर लिटा कर दोनों बाहर आ कार को पीछे से धकेलने लगे।

राजे ने खिड़की से गर्दन बाहर निकाल कर चारों ओर नजर डाली और—अचानक गाड़ी स्टार्ट हुई और इस तेजी के साथ कि हवा की मानिंद वह जा—वह जा और आंख से ओझल। अप्रत्याशित धक्का खाकर दोनों बुरी तरह लड़खड़ा गए और स्तंभित—कोई बोल न फूटा। जब तक वस्तुस्थिति समझ में आए, कहा कार, कहा वह साहब ! धूल का एक हल्का-सा आभास और वेबस खड़े दो जने।

राजे ने फिर दिल्ली की सीमा मे आने से पहले दम नहीं लिया। बीस-पच्चीस मिनट की भयंकर त्रासदी दुःस्वप्न की तरह अभी भी उसके साथ लगी थी। उसने गाड़ी रोकी और बाहर आ गया। जेब से रूमाल निकाल कर उसने चेहरा पोंछा, इधर-उधर देखा—अब कहीं कुछ नहीं था। उसने राहत की सांस ली। अब वह पहुंच जाएगा घर। दस-पन्द्रह मिनट की देरी से कोई फर्क नही पड़ता। नीना जरूर नाराज होगी—वह बताएगा उसे कि कैसी मुसीबत से मरते-मरते बचा है वह आज। उसने अंदर झांक कर देखा। अभी उस मुसीबत का अंतिम अंश शेष था। क्या करे इसे—लेता जाए घर, पहुंचवा देगा फिर अस्पताल मे ! और अगर कहीं मर गया

घर तक पहुंचते-पहुंचते तो ? कहीं किसी ने देख लिया तो और मुसीबत। कहां छिपाता फिरेगा इसे वह ! कमबख्त यह सब कुछ आज ही होना था।

अंधेरा गहरा गया था। ब्रिज पर आसपास कोई नहीं था इस वक्त। सामने जमना का पानी फैला था। उसने लड़के को उठा लिया हाथों पर। निश्चल वह मानो अब भी गहरी नींद में सो रहा हो। रामपाल ठीक ही कह रहा था। उसकी धड़कन इतनी धीमी थी कि सांस का पता चलना मुश्किल था। बचेगा, बचेगा नहीं अब यह—वह फुर्ती से ब्रिज की रेलिंग की ओर बढ़ा—छ पा ऽऽऽ क ऽऽक—

और उल्टे पैरों वह गाड़ी की ओर लौटा। नहीं—किसी ने कुछ नहीं देखा। सब ठीक था। उसे अब हर हालत में घर पहुंचना था। राय उसका इंतजार कर रहा होगा।

सन्नाटे के आगे

ढलती दोपहरी की धूप अब तेजी से सरक रही थी। जाती धूप का एक टुकड़ा बरांडे के कोने पर सिमट आया था। न जाने कब से विद्यानिवास जी अखबार लेकर बैठे थे और फिर बैठे-बैठे कुर्सी पर ही पसर गये। दो-तीन दिन से बेहद बेचैन हैं वह! लगता है कि दिमाग तो बहुत तेजी से चल रहा है लेकिन हाथ-पैरों में इतना ही आलस भर गया है। गुर्र र्र गुर्र र्रऽऽऽ भूरी बिल्ली, जो पास ही लेटी थी, उठी, उनके पैर से दो मिनट अपना बदन रगड़ती रही और फिर तन कर चल दी दुम उठा कर। उन्होंने क्षण भर को आंख खोलकर उसे जाते देखा और फिर अखबार मुंह पर डाल आंखें बन्द कर ली। लगता है सीधी चली आ रही धारा के उस बिन्दु पर जहां आकर जिन्दगी की हलचल ठहर जाती है, अब कोई अप्रत्याशित फैसला करना पड़ेगा। सारी जिन्दगी इसी घर-गृहस्थी में खप गई। कुछ करने का हौसला घर के आंगन में ही दफन हो गया।

दरअसल विद्यानिवास जी एक औसत दर्जे के नागरिक हैं। औसत दर्जे से मतलब है जैसे आमतौर पर लोग हुआ करते हैं। मध्यवर्गीय परिवार, साधारण आकांक्षाएं। जिन्दगी का एक खासा तजुर्बा होने के बाद जो एक जड़ता और निष्क्रियता-सी आ जाती है कोई उद्देश्य न होने पर वैसा ही काफी कुछ। जिम्मेदारियां भी लगभग पूरी हो चुकी हैं। पिछले कुछ समय से तो यही सोचते रहे हैं कि जितने भी दिन हैं अब जीये आराम के साथ। जितने भी दिन यह गाड़ी चले—हाथ-पैर सलामत रहें और फिर एक

दिन राम-राम…।

यूं विद्यानिवास जी का यह अलगाव कोई नई बात नहीं। उम्र की इस ढलान पर आकर ऐसा हो ही जाता है अगर उम्र को ऐसे ही लुढ़का छोड़ दिया जाए अपनी राह चलते रहने के लिए। वैसे बचपन में काफी जहीन थे वह। लिखने-पढ़ने का भी अच्छा शौक था। सातवें-आठवें दर्जे में कविताएं लिखने का शौक पैदा हो गया था। इधर-उधर की चीजें पढ़ते-पढ़ते अक्सर मन डूब जाता और ऐसा लगता कि चारों ओर अब कुछ नहीं सिर्फ सागर है—दूर तक फैला। पानी—और बस सिर्फ पानी जिसके बीच पड़ा है उनका किशोर मन, कौतूहल से भरा—संशयों से सराबोर। इधर-उधर चलते-घूमते मिलती लहरें……इधर छटपटाती उधर पटकती। फिर ऐसा लगता यह लहरें उनके अपने ही भीतर हैं और उनके मन में बहुत कुछ उमड़ रहा है—घुमड़ रहा है। ऐसे में उन्हें लगता है कि कुछ लिखना उनके लिए अनिवार्य है। इसी दौरान कुछ कविताएं लिखी उन्होंने। एक कविता उन्हें अभी तक याद है जो मजदूर पर लिखी थी। उनके घर के पास एक तीन-मंजिला सरकारी इमारत बन रही थी। वहीं काम पर लगा मजदूर ऊपर से गिर गया था। पूरी घटना तो अब ठीक से याद नहीं है पर इतना जरूर याद है कि उस मजदूर की बीवी जो एक बच्चे को कमर पर लादे थी और दूसरा उसके पीछे-पीछे चल रहा था—वहां आई। उसके हृदय-विदारक विलाप से वहां सभी लोग हिल गये थे। ठेकेदार भी काफी घबरा गया था और पचासेक रुपये फौरन निकाल कर उसे दिये थे उसने। उस मजदूर के मरने और उसके फटेहाल बीवी-बच्चों के रोने ने बहुत असर डाला था तब उनके ऊपर। एक दिन हिन्दी के घन्टे में अपने टीचर को दिखाई उन्होंने वे कविताएं। उन्होंने कुछ कविताएं पढ़ी और फिर एक मिनट तक उन्हें देखा और मुस्करा कर बोले—भई वाह! तुम तो अच्छा लिखने लगे। लिखते रहो—जरूर कभी बड़े कवि बनोगे। तुम में है वह चिनगारी जो प्रयत्न करोगे तो अवश्य आग की तरह भड़केगी।

चिनगारी तो आग नहीं बन पाई, हां, क्लास में खासे लोकप्रिय हो गए थे वह। टाप पर नहीं फिर भी अच्छे विद्यार्थियों में उनकी गिनती थी और

अब कवि-रूप ने उन्हें खासी प्रतिष्ठा दिला दी अपने सहपाठियों के बीच। उस समय कभी-कभी वह भविष्य की कल्पना करते कि वह मंच पर बैठे कविता पाठ कर रहे हैं। ढेर सारी भीड सन्नाटा साधे मंत्र-मुग्ध-सी सुन रही है। स्वर-लहरी का बंधा हुआ समां कविता खत्म करते ही तालियों की गडगडाहट के साथ बिखर जाता और इसके साथ ही एक और-एक और की आवाज आने लगती। बड़ा सुखद लगता यह सब और साथ ही एक आस्था मजबूत होती जाती भविष्य के लिए, कुछ करने के लिए।

हाईस्कूल में वे फर्स्ट डिवीजन में पास हुए। खुशी से वह बेहद उत्तेजित थे। पापाजी ने तब मुहल्ले में मिठाई बंटवाई थी। पापाजी के नाम पर एक बात और पर याद आ गई। पहले वह बाबा कहा करते थे उन्हें। उन्हीं दिनों उनका प्रमोशन हुआ था और क्लर्क से सीधे सेक्शन आफीसर बना दिए गए थे। मां ने तब उन लोगों से कहा था कि बाबा-बाबा कहना अच्छा नहीं लगता। अच्छे-भले अफसर हो गए हैं अब वे इसलिए पापाजी कहना चाहिए उन्हें। काफी दिनों बाद कहीं आदत पड़ी पापाजी कहने की। हां तो पापाजी काफी खुश थे रिजल्ट से। भविष्य में बड़ा आदमी बनने में अब कोई संदेह नहीं था। इस बीच उनकी कविताएं स्थानीय अखबारों में तथा इधर-उधर के कुछ और छोटी-मोटी पत्रिकाओं में छपने लगी थीं।

वे दिन सचमुच बहुत उत्साह और उमंग से भरे थे। ऐसा लगता कि दुनिया के पास कितना कुछ है देखने, भोगने और बांटने के लिए। विद्युत किरणों-सी अथाह उत्तेजना और शक्ति महसूस होती कुछ करने के लिए। कभी-कभी ऐसा लगता कि मन जिस तेजी से चलना चाहता है, आसपास का सब उतना गतिशील नहीं है—उतना उन्मुक्त नहीं है। दूसरे लोग उस तेजी से शायद चीजों को महसूस नहीं करते। हो सकता है कि सवेरे की कच्ची धूप में उड़ते बगुलों की कतार और उनके पंखों का चमकता सुन-हरापन लोगों के लिए ज्यादा मायने नहीं रखता या बरसात में गिरती पानी की हर बूंद का जमीन से टकरा-बिखर कर चूर-चूर होना कोई ध्यान देने वाली चीज नहीं। तभी तो, जब वह इंटर की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे और नोट्स के साथ-साथ हाशियों पर लिखी कविताओं की संख्याएं भी बढ़ती जा रही थीं कि एक दिन पापाजी ने उन्हें बुलाकर कहा कि उनके

सेक्शन में कुछ जगहें निकली हैं और वह अर्जी दे दें। बहुत देर तक उन्हें यह बात समझ में न आई। फिर जब समझा तो यह समझ में न आया कि उन्हें इतना जिम्मेदार कब से समझ लिया गया है। दुबारा पापाजी से बात की तो फिर ऐसा लगा कि उनके लिए यह सोचने की कोई बात है भला!—अरे भाई, नौकरी क्या आजकल धरी रहती है? अभी मौका है, लग जाओगे तो आगे कुछ-न-कुछ होता ही रहेगा। और बस, आगे कोई गुंजाइश नहीं थी।

पापा जी का काम पक्का था, अतः नौकरी मिल गई तुरन्त। कहां दुनिया जहान को जीत लाने की कल्पना और कहां इस कलर्की के साथ अपने संसार की शुरुआत! फिर थोड़ा मन को राहत पहुंचाई इस विचार से कि क्या फर्क पड़ता है। नौकरी के साथ-साथ पढ़ाई जारी रहेगी तो फिर कहीं-न-कहीं जरूर अच्छी जगह लग जाऊंगा। मन में कहीं पर यह भाव भी आया कि नौकरी चाहे जैसी भी है, अपने पैरों पर तो खड़ा हूं··· अपनी मेहनत के साथ है। जो करूंगा अपने बूते पर करूंगा।

दरअसल एक छोटा-मोटा इश्क भी कर डाला था उन दिनों। पड़ोस के वकील साहब की लड़की थी वह। दैनिक पत्र में उनकी अक्सर छपने वाली कविताओं को देखकर उसे ऐसा लगा था कि शायद वही है उन कविताओं की प्रेरणा और वह प्रशंसक बन गई कविताओं की और कवि की भी। उन्हें मालूम होने पर कि उनकी प्रशंसक सचमुच इतने नजदीक है, उनके लिखने में तेजी आ गई थी। लेकिन ऐसा चलता-फिरता इश्क तो सभी कर लेते हैं और फिर चार-छः साल बाद कोई सोचता भी नहीं इस ओर। हां, पापा जी के कान में भनक पड़ने पर यह अवश्य हुआ कि चटपट उनकी शादी कर दी गई।

इसके बाद तो जीवन और भी व्यवस्थित हो गया। इस बीच बदली हो गई और घर से अलग हो गए वह। शुरू में काफी कुछ अपनापन, एक विशिष्टता कायम रखने की कोशिश की लेकिन ज्यादा चला नहीं। कविताएं लिखना अब कम हो गया था लेकिन भविष्य के प्रति अभी आशावान थे वह। एक कालिज में दाखिला भी ले लिया था। सवेरे नौ बजे तक क्लास होती, फिर दफ्तर। शाम को मित्रों के साथ कभी कोई संगीत

समारोह में, कभी किसी सांस्कृतिक आयोजन में तो कभी पढ़ने-पढ़ाने की चर्चाएं; राजधानी में खासे आकर्षण के बिन्दु हुआ करते हैं। पत्नी साधारण नाक-नक्श की, ठीक-ठाक थी—संतुष्ट रहने वाली सो ज्यादा खींच-तान न थी।

इन्हीं दिनों वेतन सम्बन्धी कुछ पुरानी मांगों के सिलसिले में सरकारी कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी। नया खून था सो हड़ताल में शामिल हो गए। कुछ अनुभवी व बुजुर्ग लोगों ने समझाया भी कि अभी अस्थायी नौकरी है, हड़ताल वगैरा के चक्कर में न पड़ो। लेकिन साथियों के साथ दगा कैसे करते। फिर शाम को रोज ही तो मानव अधिकारों और बुनियादी हकों पर बहस करते, कैसे संघर्ष को ठुकरा देते और नतीजा, जितना सोचा था उससे भी बुरा हुआ। अधिकारियों ने बहुत जिद्दी रवैया अपनाया और काफी हड़ताली गिरफ्तार कर लिये गए।

जेल जाने पर काफी शहीदाना भाव था मन में। सचमुच, अपनी भावनाओं के अनुरूप काम करने पर जो मानसिक संतुष्टि होती है वह हार्दिक प्रसन्नता देती है। साथ के अन्य साथी जब वहां मिलने आते तो मन और ऊंचा होता। कभी मन में यह भाव आता कि इसी प्रकार बड़े उद्देश्यों के लिए ही अपना जीवन समर्पित कर देंगे। जेल में अधिकारियों का रवैया अक्सर अपमानजनक होता। तब यही सोचते कि हमें त्याग करना है, मानव सेवा करनी है और वे कल्पना करते कि वे एक बड़े राष्ट्रीय नेता बन गए हैं और फिर इस जेल में निरीक्षण के लिए या किसी उद्घाटन समारोह में आ रहे हैं। ये जेल के सभी अधिकारी बहुत सम्मानपूर्वक उनके साथ हैं और उनके सान्निध्य को अपना सौभाग्य समझ रहे हैं……।

जेल में आने के बाद हुआ यह कि उनकी नौकरी छूट गई। यूनियन लगातार इस कोशिश में थी कि किसी कर्मचारी को इस प्रकार की सजा का शिकार न होना पड़े। बहुत दौड़-धूप के बाद स्थायी कर्मचारियों को तो वापिस लेना पड़ा लेकिन उन जैसे चार-छः अस्थायी लोगों को सचमुच हाथ धोना पड़ा नौकरी से। सभी लोग बेहद परेशान और असन्तुष्ट थे। कुछ वरिष्ठ लोगों की स्वार्थपरता और अवसरवादिता का फल सभी को

भुगतना पड़ रहा था।

एक साल पहले अगर यह नौकरी छूट गई होती तो शायद वह खुश होते कि चलो फिर उन्मुक्त होकर घूमा जाय लेकिन अब पूरा एक परिवार बन चुका था अपना इसलिए यह कहने की हिम्मत नही थी कि—अच्छा हुआ झंझट छूटा। घर मे मदद के लिए कुछ कहना अपनी शामत बुलाना था क्योकि बकौल उनके, हिमाकत अपनी ही थी। हां, इतना जरूर किया पापाजी ने कि एक दिन आकर पत्नी और छोटे तीन महीने के बेटे को अपने साथ लिवा ले गए।

ऑफिस वे अब भी जाते, थोडा घूम फिर-कर, मिल-मिलाकर लोगों से चले आते। सभी साथी मिलते, चाय पिलाते, हाल-चाल पूछते। यूनियन के लोग अभी भी कोशिश मे थे कि मामला ठीक हो जाए, लेकिन क्योकि उन जैसे बहुत थोडे ही लोगों का मामला था वह अत. अधिकारी लोग अपने रवैये पर अड़े थे। रुपये-पैसे से भी साथी लोग मदद करते लेकिन कभी-कभी ऐसा लगता कि वे अब आंख चुराने लगे हैं। यह देख उन्हें गुस्सा आने लगता। इधर पत्नी की भी रोज चिट्ठिया आती कि ऐसे कब तक चलेगा। कुछ कीजिए इंतजाम।

इस बीच उनके ऑफिस की कैंटीन का ठेका साथियों ने उन्हे दिलवा दिया। घर पर उन्होने बताने की जरूरत नही समझी वरना उन लोगो को एक सदमा और पहुंचता कि बेटा कैंटीन चला रहा है। दो-तीन साल बाद जब बहुत दौड-धूप और कोशिश-सिफारिशों से दूसरी जगह उनकी नौकरी लगी तो पता नही क्यों वे अन्दर से बुझ चुके थे। चुप रहने वाली पत्नी इतने दिनों अलग रहकर बहुत तेज और आक्रामक हो गई थी। शायद उसने ही यह विश्वास उन्हे दिला दिया था कि उनकी वजह से ही उसने और उसके बेटे ने बहुत सहा लेकिन अब और न सहेंगे। उनके जीवट और लगातार सघर्ष की प्रक्रिया के लिए कही कोई प्रशसा न थी। उनका मन एक बार फिर सही-गलत के भवर मे फस गया।

यह मोर्चा तो जीत लिया लेकिन अब जिंदगी बिल्कुल सपाट हो गई थी। तांगे मे जुता घोड़ा जिस तरह दौडता ही जाता है—खट-खट···खट खट···खट-खट···एक ताल, एक लय, बिना भग हुए, बिना किसी मजिल

के ! वही गति अब उनकी बन गई थी । घर-परिवार-रोजगार, हर औसत आदमी की जिंदगी का समीकरण उनके साथ भी बंध गया था । बच्चे अब एक से दो हो गए थे । पत्नी काफी स्थूल हो गई थी और सुघड़ गृहिणी की तरह घर चला रही थी । उनकी आंखों पर चश्मा चढ़ गया था । सवेरे डॉक्टर की सलाह के मुताबिक टहलने जाते । घर आकार बच्चों को तैयार होकर स्कूल जाने में मदद करते और फिर स्वयं ऑफिस के लिए तैयार होते । शाम घर आकर एक प्याला चाय पीते और अखबार पढ़ते । खाना खाकर रायल टाकीज के पास की दुकान तक जाते पान खाने और एक पत्नी के लिए लेकर आते । इतवार के दिन सबको लेकर कभी सिनेमा तो कभी अजायबघर तो कभी कहीं और । बच्चों की पढ़ाई की ओर विशेष ध्यान देते । खुद रात में उन्हें लेकर बैठते पढ़ाने के लिए और भगवान की कृपा से सब ठीक-ठाक रहे और लग गए सही जगहों पर । बड़ा लड़का बीनू इंजीनियर बन गया । छोटू एम० ए० करके लेक्चरर बनने के फेर में है । सो जिंदगी उनकी पूर्ण रूप से संतुष्ट रही । आस-पड़ौस के लोग उन लोग की शांत और सहज जिंदगी के लिए रश्क करते हैं । वे खुद भी महसूस करते रहे कि अब और अधिक उन्हें क्या चाहिए । साधारणतः उनकी सभी कामनाएं पूरी हो गईं । चारों ओर नजर दौड़ाते ड्राइंगरूम शानदार घर खासा सुरुचिपूर्ण तरीके से सजा हुआ । सब चीजें अपनी जगह ठीक-ठाक और एक संतुष्टि का भाव भर जाता मन में ।

यहां तक तो सब बहुत अच्छा था । विद्यानिवास जी का समीकरण ठीक चल रहा था । ऐसा ही ज्यादातर चला करता है । इस रास्ते में आसानी यह है कि चलते जाओ आराम से सीधे-सीधे तो बाकी और सभी चीजें भी अपनी गति से सही चलती रहती है । लेकिन तीन दिन पहले की घटना ने उन्हें मानो अंदर तक हिला दिया हो ! हद है ! इस उम्र में तो मुर्दा शरीर में भी जान आ जाती है, फिर छोटू ने ऐसा क्यों किया होगा ? यह सच था कि दुबारा अपनी नौकरी लगने के बाद विद्यानिवास जी ने फिर किसी प्रकार की राजनीति से कभी सरोकार न रखा, लेकिन इस असंपृक्तता में किसी प्रकार की क्रूरता या अन्याय का भाव कभी नहीं था । दरअसल बीच के लोगों की स्थिति विरोधाभासों में फस-

कर बहुत कठिन और हास्यास्पद हो जाती है, ऐसा वह समझते थे। अपने लडकों को भी उन्होंने इस प्रकार के विवादों में फंसने और हिस्सा लेने के लिए कभी प्रेरित नही किया, लेकिन उनका मौन बच्चों मे इस कदर ठण्डापन भर देगा, इसकी उन्होंने कल्पना न की थी।

घर में किसी को रत्ती भर अंदेशा नही कि इस छोटी सी घटना से वे इतने परेशान हो सकते हैं। इन दिनों चारों ओर व्याप्त हवा के सन्नाटे से लोग इतने भयभीत हैं, इसका उन्हें अन्दाजा ही न था। अभी कुछ दिन पहले इमरजेंसी लगने पर उनकी कोई खास प्रतिक्रिया नही हुई थी। शुरू मे तो कुछ उन्हें ऐसा लगा था कि इमरजेंसी सचमुच कुछ अच्छा कर दिखाएगी। दफ्तर मे लोगों के अब बिल्कुल सही समय पर जाने से बहुत खुश थे वरना अपने विभाग से क्लर्कों से उन्हें अक्सर शिकायत रहती थी। कभी चाय, कभी लंच, और दो-तीन मिलकर बैठ जाएं तो हा-हा-हू-हू में ही सारा समय निकाल दें। इसलिए उनका काम चलता रहा यथावत्। तभी उनके यहा कुछ लोगों के खिलाफ इंक्वायरी हो गयी। उन्हें बहुत ताज्जुब हुआ क्योंकि उनमें से काफी लोगों को वह निकट से जानते थे जो अपने काम और व्यवहार में बहुत अच्छे थे। फिर पता चला कि अब उनमें से अधिकतर लोग सरकार से अलग दूसरी पार्टियों से जुडे हुए थे इसलिए जांच-पडताल की कार्यवाही हुई। वैसे अपने यहा उन्होंने यूनियन-बाजी और किसी भी प्रकार की राजनीति से कभी कोई वास्ता नही रखा था। शुरू मे लोगों ने उनकी काफी लानत-मलामत और फिकरेबाजी की लेकिन उन पर कभी कोई असर नही हुआ।

तो क्या उनकी इस तरह की उदासीनता का ही यह नतीजा है कि छोटू इतना आत्म-केन्द्रित हो गया कि आदमीपन भी भूल गया? यह सच है कि आजकल वह नौकरी के चक्कर मे है। इसी साल एम० ए० फर्स्ट डिवीजन मे करके वह रिसर्च कर रहा है। उनके विभागाध्यक्ष प्रोफेसर मिश्रा बहुत धाकड़ आदमी हैं। राजनैतिक रूप से भी वह बहुत प्रभावशाली हैं। उनका पूरा आश्वासन है कि छोटू को दो-एक साल के अंदर वह जरूर चिपका लेंगे अपने विभाग मे। बदले में छोटू भी भरपूर सेवा कर रहा है उनकी। इधर प्रो० मिश्रा का मकान बन रहा है और सवेरे से शाम तक

वह वहीं रहता है। अपने सामने खड़े होकर मकान बनवा रहा है छोटू उनका।

हां, उस दिन रात को हुआ यह कि बलभद्र आया। कुछ सकपकाया हुआ-सा था। शुरू-शुरू में जब उनकी नौकरी लगी थी तब उनका यार था वह। सवेरे-शाम उठने-बैठने का साथ था उसका। मैनेजमेंट के साथ झगड़ा होने पर भी दोनों साथ-साथ झंडा लेकर आगे थे। फर्क सिर्फ तब यह था कि वह अस्थायी थे और बलभद्र पक्की नौकरी वाला था। जेल भी दोनों साथ ही साथ गए। फिर बलभद्र को तो बहुत झगड़ों के बाद वापिस नौकरी पर ले लिया गया लेकिन वह बरख़ास्त हो गए और फिर इस दूसरी जगह पर आ गए। यहां आकर वे तेजी से तरक्की की सीढ़ियां चढ़ते चले गए लेकिन बलभद्र यूनियनबाजी में ही लगकर जहां था वहीं रहा। पिछले अठारह-बीस वर्षों के दौरान कभी-कभार ही उससे मुलाकात होती पर सब कुछ बस चलता हुआ सा था। वे कभी भी खुलेपन से नहीं मिल पाए उससे। अजीब संकोच से भर जाते और कहीं किसी कोने में अपने को हारा हुआ-सा पाते इसलिए दुआ-सलाम भर ही हो पाती। अतः उस दिन बलभद्र को अपने घर पर देख ताज्जुब हुआ। थोड़ी देर इधर-उधर की कहने के बाद उसने सीधे-सीधे कह दिया—यार विद्या, दो-एक दिन तुम्हारे यहां रहना चाहता हूं। फिर खिसक लूंगा चुपचाप मौका देखकर। बात यह है कि पुलिस मेरे पीछे है और तुम्हारे यहां किसी को भी शक नहीं होगा।

विद्यानिवास जी को तब सारा किस्सा समझ में आ गया। बहरहाल, उन्हें क्या ऐतराज हो सकता था। थोड़ी खुशी ही हुई उन्हें कि अर्से बाद पुराना साथी मिला है और किसी-न-किसी रूप में वह उसका साथ दे रहे हैं; उन्होंने उसे ड्राइंग रूम से हटाकर अंदर वाले कमरे में पहुंचा दिया और स्वयं पत्नी के पास जाकर उसे वस्तु-स्थिति समझा दी।

रात गए जब छोटू घर आया तो संभवतः उसकी मां ने उसे सब बता दिया था क्योंकि सवेरा होते ही सीधे वह उनके पास आया। काफी नाराज लग रहा था। बलभद्र अभी सोया हुआ था और छोटू का मूड देखकर वह उसे लेकर दूसरे कमरे में आ गए। उन्होंने उसे समझाया कि बलभद्र उनका

पुराना साथी है, उनका दोस्त है और उन लोगों ने बहुत दिनों तक साथ काम किया है। लेकिन छोटू तो कुछ समझना ही नहीं चाहता था।

—ठीक है, पुराने साथी हैं आपके। लेकिन यह भी सोचा है कि उनकी वजह से हमारे ऊपर भी आंच आ सकती है?

—क्या आंच आएगी बेटा! हमारा क्या नुकसान होना है। तुम सब पढ़-लिख गए हो, अपने पैरों पर खड़े हो—क्या चिंता है मुझे—उन्होंने हंसी में बात को उड़ाना चाहा।

—क्या बात करते हैं डैडी आप भी। अगर पुलिस को पता चल गया और वह आ धमकी तो?

हंसे वह—पहले तो पता ही नहीं चलेगा और फिर अगर पुलिस आ भी गई तो क्या बात है? वह कोई चोर-डाकू थोड़े ही है। पोलिटिकल आदमी है ट्रेड-यूनियन चलाता है।···ना बेटा, जो तुम चाहते हो वह मैं नहीं कर सकता।

छोटू को यह उम्मीद कतई नहीं थी कि उसके डैडी इस तरह साफ इंकार कर देंगे। आज तक कभी अपनी इच्छा को उन्होंने इस तरह स्थापित नहीं किया था।

—अपना नहीं हमारा तो ख्याल करें। मिश्राजी को ही मालूम पड़ गया तो कितने नाराज होंगे। फिर तो दे दी उन्होंने मुझे नौकरी—और भुनभुनाता हुआ वह चला गया।

उन्होंने ज्यादा बात बढ़ाना ठीक नहीं समझा। बिना वजह शोरगुल में बलभद्र को असमंजस की स्थिति में डालना नहीं चाहते थे वह और फिर सारे पड़ोसी सुनते सो अलग। बहरहाल उस दिन लंच टाइम पर ही सिर-दर्द का बहाना कर वे जल्दी घर लौट आए और सीधे बलभद्र के पास गए। पर बलभद्र वहां नहीं था। पत्नी से पूछा तो सकपका गई। फिर अपने को व्यवस्थित करने की चेष्टा में थोड़ा तेज होकर कहने लगी—

चले गए थोड़ी देर पहले। मुझसे कुछ नहीं कह गए। अप्रत्याशित रूप से चीख पड़े वह—कहां चले गए? जरूर कुछ कहा होगा तुम लोगों ने।

—अरे मैं क्या जानूं इस छोटू ने क्या कहा उनसे मुझे क्या मालूम?

फिर थोड़ा मुलायम होकर समझाने लगी—बच्चे बड़े हो जाते हैं तो

क्या किया जाए । सुननी तो पड़ती है उनकी भी ।

उनका मन वितृष्णा से भर गया। सिर्फ इतना ही कह पाए वह—सारी ज़िंदगी तुम्ही लोगों के पीछे खपा दी । आज इतना भी हक नही मुझे कि अपने किसी दोस्त को दो दिन के लिए ठहरा सकूं'''।

यू देखने मे लगता है अब सब ठीक हो गया है । एक-दो दिन छोटू मुह छिपाता फिरा था फिर यह सोच कर कि बात आई गई हो गई है, पूर्ववत हो गया । ऊपर मे विद्यानिवास जी जरूरत से ज्यादा ही शात हो गए है लेकिन मन उतना ही ज्यादा उमड रहा है । बार-बार उठती टकराती लहरें पूछती हैं—क्या यही है तुम्हारी जिंदगी का निचोड़? क्या-क्या करना चाहा था और कितने असहाय हो गए हो ।

बहुत शात होकर विद्यानिवास जी उठे । अखबार तह कर स्टूल पर रखा । पत्नी थाली और सब्जी लेकर वही पास बैठ गई थी । उन्होने सोचा --अभी क्या खत्म हो गया है । ठीक है । बहुत हो गया है घर के लिए । इस कुछ न कर सकने की असहायता को क्यों कर झेले आगे । बलभद्र अभी भी इतना सक्रिय और जानदार हो सकता है, तो वे क्यो नही हो सकते । क्या कही कोई दबी हुई चिनगारी शेष नही है उनमे ? उन्होने चारो ओर एक नजर दौड़ाई—अपने व्यवस्थित घर को भरपूर निगाहों से देखा और गहरे रीतेपन से भर गए अन्दर तक । दराज से कागज निकाल बैठ गए—कुछ लिखने के लिए । जाने से पहले अपने निर्णय की सूचना वे दे देना चाहते थे ।

नाले पार का आदमी

उसे जब कभी कुछ गलत होता मालूम देता है तो वह किताबें खंगोलने लगता है। पुरानी आदत है यह। मानो वहां उसे जरूर ऐसा कुछ मिल जायेगा जो बता देगा कि वास्तव मे क्या गलत हुआ है और कहां हुआ है। उसकी किताबें मेज, लकडी की रैक, वद अलमारियों से होती गुजरती अब शानदार आबनूसी लकडी की खूबसूरत अलमारियो मे पहुच गई हैं। शीशों से जिल्द चढ़ी किताबो के सुनहले हरफ चमकते हैं। उसने अलमारी खोली—एक-एक करके। एक किताब निकालता, उलट-पुलट कर देखता और फिर लगा देता जगह पर। कहा गलत हुआ है? किताब पर एक रेशा चिपका था धूल का। उसने निकाल कर उगली से साफ कर दिया था वह हिस्सा और फिर सहेज कर धीरे से वही जगह पर खिसका दिया। मन उचट-सा गया था। खिड़की से मुह निकाल बाहर देखने लगा। ठंडी हवा हौले से गर्दन मे गुदगुदा गई। विश्नू बाहर लॉन पर पानी लगा रहा है। बहुत मेहनत करता है यह भी। एक-एक फूल ही नही शायद हर पत्ती का भी हिसाब रखता है। आजकल डहेलिया और गुलाब पूरे बहार पर हैं। एक उसकी पसन्द है तो दूसरी मालिनी की।

धीरे-धीरे कदम रखता वह फिर खुली अलमारी के पास आ गया। क्या सचमुच वह चूक गया? नही-नही। ये सोंडे-लफाडे हैं। इन्हे इतनी गम्भीरता से नही लेना चाहिए। काम-धाम तो कुछ होता नही सिर्फ लफ्फा-जी करते हैं लफ्फाजी मे ही अगर क्रांति होनी होती तो अब तक बहुत बार

हो चुकी होती। लेकिन उसकी हिम्मत कैसे हुई यह सब लिखने की। उसने जेब से मुड़ा-तुड़ा कागज निकालकर खोला। शमीम का पत्र था। खुद उसके बाप मिर्जा ने उसका बहुत ख्याल किया। पिछले दिनों मिर्जा काफी कुछ कहता रहा था शमीम के बारे में कि बहुत अच्छा जागरूक लड़का निकल रहा है और काफी सक्रिय है छात्र राजनीति में। शमीम ने लिखा है—

चचा जान!

माफ कीजियेगा, आपको यह खत लिख रहा हूं। पिछली बार जब आप यहां आये थे तो आपसे मुलाकात न हो सकी। अब मैं एम० ए० में पढ़ रहा हूं। यह इसलिए लिख रहा हूं कि फिर आप यह न कहें कि जब तुम्हारे बाप को पैजामा बांधने की तमीज नहीं थी तब से मैं राजनीति में हूं। बहरहाल आप मेरे बड़े हैं और इज्जत के हकदार हैं। नज्म और गीत अच्छे लिखते हैं फिर बिना बात क्यों राजनीति की बहस में पड़ते हैं। यह सब आपके बस की नहीं। मेहरबानी—इसे बख्श दें। और हुक्म करें

आपका शमीम।

उसकी कनपटियां गर्म हो उठी थीं। सामने दीवार पर एक चूहा दुबकता-छिपता दौड़ गया। चुपचाप बिना आहट किये चप्पल उतारी और खींच कर मारी उसे। निशाना सीधा पड़ा था। चूहे का शरीर दब गया था और वह चिचिया रहा था। उसको दुम पकड़कर घुमाते हुए खिड़की से दूर सड़क पर फेंक दिया।

पीछे की अलमारी से स्कॉच की बोतल और गिलास निकाल लिया। नरायन···चिल्लाया। फिर ध्यान आया कि वह तो बाजार गया है। खुद अन्दर गया और फ्रिज से बर्फ निकाल कर ले आया।

'क्या करें, आदत तो खराब हो ही गई है'—बुदबुदाया वह।

उसने कब चाहा था कि चीजें इस हद तक गलत हो जाएं कि संभाले न संभलें कि आज वह बित्ते भर का छोकरा उसे पढ़ाये।

आखिरी दो-तीन घूंट वह एक साथ गले के नीचे उतार गया। भली

चलाई उसकी। वह आज भी चन्दा देता है। पैम्फलेट छपने हैं तो—जुलूस निकालना है तो—पैसे कम पड रहे हैं तो हर बार मुकुल दा—साहित्यिक सम्मेलनों में आज भी बकौल मिर्जा के पानी में आग लगाने वाली तकरीर करता है और ऐसी करता है कि उतनी देर लोगों के पहलू बदलने की आवाज भी नहीं होती।

मिर्जा—उसका साथी, उसका दोस्त, वह। समझता है। उसे उसके ख्याल से कितना कुछ सामने फैल जाता है। हरे-भरे मैदान-सा विस्तृत।

मिर्जा के साथ उसकी अन्तरंगता—आज भी वह अतीत उसकी जिंदगी का एक बेहतरीन समय है। उसे वहां आये कुछ ही समय हुआ था जब मिर्जा की नियुक्ति वहां हुई। लन्दन में चार साल रहकर वह हिन्दुस्तान आया था और तभी वहा लग गया। मिर्जा हमेशा का मेधावी छात्र। छोटा कद, दुबला नाज़ुक शरीर, दूधिया रंग और चमकती काली सपने देखती आखें, ढेरों खयाल, सैंकड़ों इरादे उसके अन्दर उठते कुलबुलाते से घूमते। जल्दी ही उसकी और मिर्जा की पटने लगी। तीसरा एक नाम और जो कुछ अर्से बाद इन लोगों के साथ जुड़ने लगा, वह था सिम्मी का। सिम्मी की शिक्षा-दीक्षा का एक बड़ा समय हिन्दुस्तान से बाहर बीता। पिछले दस साल में वह इंग्लैंड में थी और थोड़ा ही समय हुआ था उसे वहा से लौटे हुए। एक बहुत बड़े उद्योगपति की बेटी—प्रतिभा-सम्पन्न और कुछ कर गुजरने के हौसले से भरपूर। तीनों की तिकड़ी खूब जमने लगी और तेजी से वे लोग वहां के वातावरण पर छा गये।

किताबी फार्मूलों और उन पर लम्बी बहसों के बाद—कुछ सक्रिय होना चाहिए, ऐसा वे सब सोचते और महसूस करते थे। मिर्जा में जबरदस्त संगठन की शक्ति थी। कुछ ही दिनों में उसने वहां चपरासियों तथा दूसरे चौथी श्रेणी के कर्मचारियों की यूनियन बना डाली। पहला फैसला था कि प्रोफेसरों तथा दूसरे अधिकारियों के घर पर कोई काम नहीं करेगा घरेलू नौकरों के रूप में इस्तेमाल होने वाले इन चपरासियों पर साहबों से ज्यादा उनकी मेम साहिबाएं हुक्म चलातीं और उनके नाराज होने पर साहब से लम्बी दुश्मनी का सिलसिला चालू होता। डीन ऑफिस के चपरासी राम खेलावन की सवेरे-शाम की ड्यूटी डीन साहब के घर लगती।

एक दिन उनके छोटे बेटे ने उसे पीट दिया। उसे घर आने की जल्दी थी क्योंकि उसकी बीवी अस्पताल में थी, इसलिए उसने छोटे साहब से कहा था कि वह उनके कपड़े लॉन्ड्री से कल ले आयेगा।

मिर्जा बहुत तैश में था इस वाकये से—

'ये तो इन पढ़े-लिखे लोगों का ख़ून है—हद है! अपने नीचे के लोगों को आदमी थोड़े ही समझते हैं ये, गुलाम हैं सब इनके गुलाम! छोटे आदमी की कोई इज्जत ही नहीं···' और एक हफ्ते बाद ही पूरे विश्वविद्यालय में उसने हड़ताल करवा दी। पूरी हड़ताल। हॉस्टल में कोई कर्मचारी नहीं आया। विज्ञान की सभी प्रयोगशालाएं बन्द रहीं। मेस बन्द रहे। कोई एक-डेढ़ हजार का मजमा उपकुलपति के यहां घेरा डाल कर पड़ गया। अन्त में डीन साहब को खुद राम सेलायन से माफी मांगनी पड़ी। मिर्जा की यूनियन के हौसले बहुत बुलन्द हो गये। हां, वहां के लोगों की आंख की किरकिरी वह अवश्य बन गया था।

मिर्जा बहुत मेहनती और प्रिय था अपने लोगों के बीच। अध्यापन के बाद उसका ज्यादातर समय उनके बीच बीतता। साथ ही वह नगर के दूसरे कामों में भी शामिल होने लगा था। एक दिन दोपहर को आया, 'चलो जरा शहर तक चलते हैं। रिक्शा यूनियन की मीटिंग है।'

—'अरे भाई यह कब से!'

'बस अभी नई यूनियन बनी है। आज पहली मीटिंग है।'

'ये यूनियनबाजी मेरे बस की नहीं मिर्जा···'

'अबे तो बस कलम ही घिसता रहेगा' और एक कसकर धौल लगाई उसने पीठ पर—'कुछ नहीं तो जरा तकरीर ही करना जम के। बात यह है कि पानी में आग लगाने वाली तकरीर तो तुम्हीं कर सकते हो न।'

हां, यह काम वह बखूबी कर सकता था! उसका लेखन उन दिनों तेजी से चल रहा था। वह जितना अच्छा लिखता, गाता भी उतना अच्छा था। उसकी कविताओं में आग की-सी धधक थी। फूलों का रंग था और रंगों पर ओस बरसती थी। उसकी कविताओं में जीवन था, जीवन की ललक थी। सपने थे, सपनों की खुलती-सिमटती आशाएं थीं। लोग फिदा थे उसकी कविताओं पर, उसके तरन्नुम पर। वह भी हर साहित्यिक आयो-

जन में उपस्थित रहता। बुद्धिजीवियों के बीच से लेकर कामगारों-मेहनत-कश लोगों के बीच तक, उसकी स्वर-लहरी गूंजती। वह कहता भी था—'मैं जनता का कवि हूं। आप लोगों तक मेरा सीधा सम्पर्क है। मैं तो जन-जीवन का गायक हूं।'

सचमुच लोगों के दिलों पर राज करता था वह। विशेष रूप से नौज-वानों में वह बहुत प्रिय हो चला था। लड़कियां फिदा थीं उस पर। कभी नाम से, कभी गुमनाम, तरह-तरह के पत्र उसके पास आते रहते। अक्सर वे पत्र आपस में बैठ कर पढ़े जाते और वे सब खूब हंसते, मजे लेते।

सिम्मी को उसकी कहानी-कविता में ज्यादा दिलचस्पी नहीं थी। वह समाज-सेवा में इन चीजों को ज्यादा महत्व नहीं देती थी। इस नजरिये से वह मिर्जा की ज्यादा प्रशंसक थी और उसके कामों में दिलचस्पी लेती। उसे वह अक्सर ताना देती कि कविता मानसिक विलास की चीज है। इस पर वह सिम्मी पर हमेशा साबित करता कि उसे साहित्य की कोई समझ नहीं। वैसे उसके अंग्रेजी-दां होने का मजाक दोनों ही खूब उड़ाते। मिर्जा तो अक्सर कहता—सिम्मी तुम तो क्रांति अंग्रेजी में ही करोगी।

उन्हीं दिनों उन लोगों ने एक चुनाव लड़ाया। उसके एक बहुत नज-दीकी चाचा, रिटायर्ड प्रिंसिपल थे। शहर तो क्या, हां, अच्छा-खासा कस्बा था जहां वह रहते थे। वहां एक अकेला डिग्री कालेज था, जिसकी स्थापना के बाद वह उसके पहले प्रिंसिपल बने। लगभग अट्ठाईस-तीस साल की लम्बी सेवा-अवधि। सामाजिक कामों में खासी रुचि। उन्हें किसी ने यह समझा दिया कि आप एम० एल० ए० का इलेक्शन लड़ लीजिए, जरूर जीत जायेंगे। गणित यह लगा कि लगभग हर घर में से कम-से-कम एक सदस्य अवश्य उनका शागिर्द रहा है सो इतना लिहाज सब करेंगे। फिर वह इलाके के प्रतिष्ठित और साख वाले आदमी, स्वभाव से नम्र और मितभाषी। इस लिहाज से सबसे ज्यादा सम्भावना उनके पास में है। और उन्हें यह गणित समझ में आ गया। वैसे भी खाली बैठे कोई और काम नहीं था। खैर वह विश्वविद्यालय से एक महीने की छुट्टी लेकर आया। मिर्जा को वह अपने साथ लाया क्योंकि लोगों के बीच काम करने वाला वही था। सो रग पहचानता था जनता की। सिम्मी को शौक था भारत

की आम जनता को देखने और नये अनुभवों का, इसलिए पीछे-पीछे एक दिन वह भी आ धमकी।

चाचा जिस मुहल्ले में जाते वहां उनका हार्दिक स्वागत होता। हर घर में चाय-नाश्ते का आग्रह। सचमुच उनके शिष्य हर जगह मौजूद थे, हर रूप में, हर क्षेत्र में। पांव छुआते, चाय-पानी पीते लगभग हर घर में वह व्यक्तिगत रूप में घूम आये। हर घर में उन्हें आश्वासन था।

वे लोग भी बहुत उत्साहित थे। सचमुच लगता था कि चचा जीत ही जायेंगे। सिम्मी ने पूरा इलेक्शन कम्पेन बहुत एन्जॉय किया। चुनाव का पूरा ऑफिस उसी ने संभाला हुआ था।

चुनाव का नतीजा—उसकी सब बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहे थे। शायद उन सबकी मेहनत रंग ले ही आये। लेकिन नतीजा अप्रत्याशित रूप से उल्टा था। चाचा को बमुश्किल कुछेक हजार वोट मिले थे और उनकी जमानत जब्त हो गई थी। मिर्जा बोला—

"मैं कहता था न कि चुनाव का गणित व्यक्तिगत नहीं होता। राजनीति के मुहरे और अन्य स्वार्थ होते हैं।"

सचमुच उस ब्लैक मार्केटियर पन्नालाल का जीतना उनके लिए सदमा था लेकिन पन्नालाल ने सत्ताधारी पार्टी के टिकट पर चुनाव लड़ा था। निर्दलीय उम्मीदवार के पास कौन-सी शक्ति होगी? अच्छा आदमी होना राजनीति में गुण नहीं माना जाता। बहरहाल—वे लोग लौट आए। हां, सिम्मी ने जरूर तय किया कि वह गांवों में जाकर काम करेगी। वही असल कार्यक्षेत्र है। खुद उसके अन्दर नई कल्पनाएं करवटें लेने लगी। शब्द नये सपने बुनने लगे और महत्वाकांक्षाएं जागने लगी थी।

सिम्मी ने एक बार एक प्रोग्राम बनाया। तय किया कि वे लोग पास के मारहरा गांव चलें। बहुत तैयारी की। सबको अपनी मोटर में लादकर ले गई। कुछ पुराने छोटे-बड़े कपड़े इकट्ठा किए उसने बांटने के लिए। वहां गांव में पहुंचने पर लगा कि यहां तो कहीं रुकने-बैठने की जगह भी नहीं। दोपहर का वक्त। घरों में ज्यादातर औरतें और बच्चे ही थे। काफी हिंदी सीखने के बावजूद सिम्मी अभी विदेशी ही थी अपने लहजे और बोलचाल में। कुछ समाज-सेवा और कुछ पिकनिक—दरअसल इस ख्याल से यह

दबाव——

मोमासु [illegible] और अब स्थिति बहुत अजीब हो गई थी। खुद सिम्मी की आधुनिक वेशभूषा, कन्धे तक कटे हवा में लहराते बाल——आंखों पर बड़ा काला चश्मा।

——'अरे फिलम के लोग है ये सब——फिलम वाले——' सब जमा हो गये उनके चारों ओर। बच्चे उछलते किलकारियां मार रहे थे। औरतें घिर आई थी चुहल करती——कोहनी मारती एक-दूसरे को।

——'दे आर फनी पीपुल' हसी सिम्मी।

फिर कुछ याद आया। पास खड़ी औरतों से बोली वह——'देखो, हम कुछ समान लाये हैं आप सब लोगों को देने के वास्ते——'

वह गाडी के अन्दर से कपडों का पैकेट निकाल लायी——'हम बांटेंगे ह आप लोगो को।'

——'ऐ बीबी, क्या कोई भिकमंगे हरौं यहां। जाओ गांव के पीछे टट्टों मे बांटि आओ।'

——'ऐ देना है तो यह कोट दे जाओ जी अपना' एक शोख-सी छोकरी ो बार-बार अपना पल्ला सिर पर कसती थी, उसका फर का कोट ीचती हुई बोली।

सचमुच अच्छा-खासा जुलूस बन गया वहां उन सबका। कमबख्त र्जा को भी आज ही काम पडना था। वह होता तो जरूर स्थिति सम्भाल ता। सब लोगो ने सिम्मी को यही सलाह दी कि लौट चलना चाहिए। फलहाल रुकना अपने बस का नही। पक्की सड़क आने तक गाड़ी के पीछे छे बाकायदा भीड़ चल रही थी। बच्चे चिल्ला रहे थे, चीख रहे थे। वान और बूढ़े तमाशा देख रहे थे तथा औरतें लुक-छिप कर ठिठोली कर ही थी।

मिर्जा ने पूरा किस्सा सुना तो वह बहुत हंसा।

——'अरे मैडम, जरा अपना वेश बदल लिया होता। उन गरीब गांव लों के बीच उन जैसे नही बनोगे तो वे कैसे तुम्हें अपने बीच शामिल रेंगे। अजनबी और वह भी इतने शानदार——शक की निगाहों से तो देखे जायेंगे भाई। इसमें बुरा मानने की क्या बात है।'

लेकिन वह सिम्मी के काम करने के जज्बे से सचमुच प्रभावित हुआ।

—'तुम पहले भाषा बदलो। बिना लोगों की भाषा के कैसे उनके बीच जाओगी। थोड़ी नीचे उतरो हाथ-पैर गंदे करो, तब···।'

सिम्मी अब बहुत सक्रिय हो गई थी। अक्सर अब वह मिर्जा के साथ देखी जाती।

उस दिन सवेरे ही मिर्जा मुकुल के कमरे पर आया। अजीब सी शक्ल बनाये। आकर फौरन पलंग पर लम्बा हो गया। काफी देर पड़ा रहा।

—'क्या बात है मिर्जा?'

—'कुछ नहीं। कॉफी बनाओ।'

कॉफी बन गई। चुपचाप बिना बोले पीता रहा वह। फिर उठ खड़ा हुआ। मुकुल भी इंतजार में था कि थोड़ी देर बाद सब्र का प्याला टूटेगा तो खुद ही उगलेगा सब।

कुछ देर इधर-उधर टहलता रहा, चहलकदमी करता रहा, फिर बोला,

—'सुना तुमने। सिम्मी शादी कर रही है।'

—'तो, अच्छी लड़की है। शादी की उम्र भी है।'

—'मजाक मत करो। जानते हो किससे?'

—'जानता तो नहीं, लेकिन अनुमान कर सकता हूं।'

—'तुम कुछ नहीं जानते।' उसने झल्ला कर मुट्ठी हवा में लहराई—'वह वित्त मंत्री शाह के बेटे से शादी कर रही है।'

—'तो—क्या तुम सोचते हो कि वह लखपति-करोड़पति बाप की बेटी, जो दस साल विदेश में रही है, पढ़ी है, आप से शादी रचायेगी।' वह अब गम्भीर था और उसे गुस्सा भी आ रहा था मिर्जा पर। उसे मालूम था कि इन दिनों अक्सर सिम्मी मिर्जा को मोटर में बिठाकर लम्बी ड्राइव्स पर ले जाती है। ऐसे मौकों पर मिर्जा भी औरों को काटने की कोशिश करता। एक आध बार पूछा तो उसने कहा—'सिम्मी आजकल सीरियसली कुछ जेनुइन प्रॉब्लम्स पर सोच रही है और काम कर रही है लोगों के बीच।'

उसे अफसोस था कि यह नाटक इतनी जल्दी खत्म हो गया।

—'जनाब मिर्जा अजहर बेग, एम० ए०, पी-एच० डी०। आप थ्रू आउट टापर हैं और इंग्लैंड से डाक्टरेट लेकर आए हैं लेकिन आप हैं क्या ? विश्वविद्यालय में लेक्चरर। और, आपके पिता क्या थे महज एक स्कूल में अध्यापक। सिर्फ इस बूते पर आज लखपति बाप की इंग्लैंड रिटर्न बेटी से शादी करना चाहते थे ? मुकुल को फिर गुस्सा चढ़ रहा था। अच्छा-भला आदमी कल तक सबको वर्ग-चरित्र और वर्ग-संघर्ष पर लेक्चर देता था और आज औंधा पड़ा था बिना बात।

मिर्जा काफी खिसिया गया था।

—'चलो घूम आयें बाहर' बात बदलने की गरज से वह बोला।

कमरे का ताला लगाते हुए उसने एक बार फिर उसे छेड़ा —'सच-सच बताना। क्या वास्तव में तुम इस गलतफहमी में थे कि वह तुमसे गाइड लाइन लेकर इन्कलाब कर देगी।'

चुप रहा वह।

—'मेरे दोस्त, इंटलेक्चुअल थी न वह। सो उसका तो शौक पूरा हुआ और तुम जैसे दो-चार लोग जरूर तबाह हो गए।'

मुस्करा दिया वह।

मिर्जा इस वाकये के बाद और अधिक शांत और संयत हो गया था। सिम्मी शादी के बाद चली गई। उसका पति विदेश सेवा में था। उसके पत्र यदा-कदा आते रहते। उसका साहित्य अब गम्भीर हो रहा था। केवल जज्बाती आग ही काफी नहीं। आम आदमी व्यवस्था के ऐसे जगल में घिरा है जहां थोड़ी कतरब्योंत कुछ काम नहीं करती। बिना व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन के आम आदमी कल्याण संभव नहीं है इन मूल प्रश्नों से अब आमना-सामना था। इस भ्रष्ट व्यवस्था में आदमी को भ्रष्ट करने के तरीके हर पोर, हर छिद्र में है—यह उसकी सर्वमानना थी। आदमी के सामने आदमी की प्रतिष्ठा नहीं, कीमत नहीं। यह दुखद स्थिति बदलनी पड़ेगी।

वह बहुत परेशान हो जाता यह सोचकर। एकदम वह कुछ ऐसा कर धरे कि सब ठीक-ठीक हो जाए। आदमी-आदमी के बीच शोषण बन्द हो जाये। सब कल्याणकारी हो—सर्वत्र आनन्द हो, मंगल हो। यह सब जल्दी हो लेकिन जल्दी।

मिर्जा सुनता, सिगरेट पीता रहता, हंस देता।

—'यह एक लम्बी लड़ाई है, लेकिन होगा मेरे भाई, जरूर होगा।'

—'लेकिन कब होगा मिर्जा, शायद तब, जब हम न रहेंगे।'

—'तो क्या फर्क पड़ता है। हम लोगों के बीच काम करते हैं एक खास मकसद लेकर, एक फेथ लेकर। इस लगातार चलने वाली लड़ाई में हम तो सिर्फ एक सिपाही हैं। जिस समाज का सपना हमने संजोया है हमारी आने वाली पीढ़ियां उसमें शरीक होंगी।'

—'यार मिर्जा, औरों की तो नहीं कहता, तुम्हारा धीमापन देखकर क्रांति आती भी होगी तो लौट जाएगी।' वह झल्ला पड़ता अक्सर—'अरे बिजली की तरह से उठो, बिजली की तरह। कौंध जाओ कि लगे हां, चमका कुछ।'

—'कौंधने वाली बिजली जिस तेजी से चमकती है उसी तेजी से खत्म भी हो जाती है मेरे भाई। उस मकसद की खातिर अपना कमिटमेंट गहरा करो तभी लग पाओगे तुम जमकर अपने काम से जो रोशनी देगी हमेशा-हमेशा।'

और हंस देता वह।

मालिनी से परिचय—इन्हीं दिनों की बात है। उसके पिता अवतार सिंह नगर के नामी-गिरामी लोगों में से थे। शुरू में बहुत मामूली ठेकेदारी से अपना काम शुरू किया था सरदार अवतार सिंह ने। फिर दूसरे विश्व-युद्ध के जमाने में बहुत दौड़-धूप कर मिलिट्री में मक्खन सप्लाई का काम करने का काम मिल गया। उस वक्त खूब मक्खन में केला फेंट-फेंटकर कमाया। कुछ जान-पहचान बढ़ी तो और काम भी मिला और लड़ाई के खत्म होते-होते एक छोटी-मोटी फैक्टरी डाल ली तालों की। उससे बढ़ते-

बढ़ते यह आज एक पेपर मिल तथा एक कपड़ा मिल के मालिक हैं और दर्जनों दूसरी कम्पनियों में भागीदारी है। तालों का तो बहुत बड़ा एक्सपोर्ट का बिजनेस है ही।

सरदार साहब के उद्योगपति होने के साथ-साथ उनकी रुचियों का भी परिष्कार हुआ। अनेक साहित्यिक संस्थाओं के संरक्षक। विभिन्न संगठनों व सम्मेलनों के अध्यक्ष। आये दिन अपने ही घर पर बड़े-बड़े साहित्यिक धुरंधरों का मजमा लगता। कभी कविता-कहानी, कभी विचार-विमर्श। मेहमानदारी भी भरपूर। एक-सी-एक शराब उनके बैठकखाने में पेश होती। अक्सर कुछ शौकीन तबियत लोग इस लालच से भी जाते उनकी बैठकों में।

मालिनी से यहीं मुलाकात हुई थी उसकी। सरदार जी ने खुद उसका सबसे परिचय करवाया था। मसूरी में पढ़ती थी वह पहिले और अब विश्वविद्यालय में द्वितीय वर्ष में एडमीशन ले लिया था। तीखे नाक-नक्श, गोरा रंग, लम्बी बरौनियां—खासी आकर्षक थी वह। फिर आकर्षण तो परिवेश बनाता है और वह परिवेश उसके पास भरपूर था।

उसने कोई खास ध्यान नहीं दिया था उस पर। दरअसल बड़े लोग, साहित्य जिनके लिए ड्राइंग रूम का शो-पीस होता है, उनके साथ बैठना उसकी आदत में नहीं था। उसका साहित्य आम जनता के लोगों के लिए समर्पित था। उसके गीत उनके लिए थे, सेठों के लिए नहीं। उसने एक दिन यही सब सरदार साहब से कह भी दिया था। बिना बात पीछे पड़े रहते पालतू बनाने के लिए।

नतीजा—खुद मालिनी ने उसके पास आना शुरू कर दिया।

—'मुकुल जी, मैं आपसे कुछ सीखना चाहती हूं···।'

—'प्लीज, आप न आयें, मुझे मत मना कीजिएगा आने से···।'

—'मुझे कविता लिखने का बहुत शौक है, क्या मैं भी आपकी तरह राइटर बन सकती हूं?'

इन सबका उसके पास क्या जवाब था। वह अक्सर उसके यहां जब तब आ जाती। मिर्जा से ही नहीं वह उसके सभी दोस्तों से परिचित हो गई थी और उनके साथ उसकी मंडली में उठने-बैठने लगी थी। अक्सर

उसकी समझ में बहस-मुबाहिसों के मुद्दे न आते तो बारी-बारी आंख गड़ाए सबके मुंह ताका करती। उसने अब गम्भीरता के साथ पढ़ना-लिखना शुरू किया और धीरे-धीरे वह भी बातचीत में हिस्सा लेने लगी। मिर्जा ने एक बार उससे पूछा भी—'क्यों भाई, क्या यह तुम्हारी सिम्मी है?'

—'नही यार। छोटी उम्र का इनफेचुएशन है। कुछ दिन बाद सब ठीक हो जाएगा—मैं अपनी औकात जानता हूं—कोई गलतफहमी नही पालता।'

और सब चलता रहा। हां, एकआध बार वह जबरदस्ती खींचकर उसे अपने घर ले गई।

—'डैडी, देखिये मुकुल जी आये हैं।' उसका उल्लास फूटा पड़ रहा था।

—'नमस्कार मुकुल जी—कहिये कैसे हैं?' वह मुस्करा दिये थे उसकी ओर मानीखेज आंखों से देखकर।

इधर तीन-चार दिन से मालिनी नजर नही आयी। एक आध बार उसने सोचा भी फिर सिर झटककर ध्यान उतार दिया। फिर क्लाइमेक्स तो तब हुआ जब वह एक शाम धड़धड़ाती हुई उसके घर पहुंची थी। वह नहीं था तो वहीं बाहर बराण्डे पर कुर्सी पर बैठकर इन्तजार करती रही। रात गये लगभग दस-साढे दस के करीब वह आया। उसे अचानक वहा देखकर ताज्जुब मे पड़ गया। यू वक्त-बेवक्त आना मालिनी की आदत थी लेकिन उस समय वह जरूरत से ज्यादा गम्भीर नजर आ रही थी।

—'कहो इस वक्त कैसे? कहां थी आजकल?'

वह चुप रही।

—'क्या गाड़ी नही लायी हो?'

—'नही टैक्सी से आई।'

—'तो कोई खास बात हो गई क्या? खैरियत तो है।'

—'मैं—मैं घर नही जाऊंगी। यहीं रहूंगी—यही...'

एकदम बिखर गई वह और फूट-फूटकर रोने लगी।

उसकी समझ में नहीं आया कि सब क्या चक्कर है। खैर, अन्दर ले गया। उसके आंसू पोंछे। कुछ व्यवस्थित हुई तो बताया कि सिंगापुर से डैडी के दोस्त का लड़का आया है इन दिनों। तीन-चार दिन से यहीं है और उसके वापस जाने से पहले डैडी उसके साथ मेरी एंगेजमेंट करना चाहते हैं।

—'अरी पगली तो इसमें रोने की क्या बात है, शादी तो होनी ही है—देर-सबेर फिर क्या।'

—'नहीं—नहीं—' वह फिर रो पड़ी।

—'मुझे तो शादी सिर्फ आपसे ही करनी है' और उसने उसके घुटनों पर अपना सिर रख दिया।

बौरा गया वह। क्या कह रही है यह लड़की। रात का समय। कहां जाये वह इस समय, क्या करे?

—'मन्नी—मेरी मन्नी।' खुद उसका स्वर भर्रा गया था—'ये मसले इतनी जल्दी में तय नहीं हुआ करते। चलो तुम्हें घर पहुंचा आऊं।'

—'नहीं, मैं नहीं जाऊंगी। डैडी बहुत नाराज हैं। मैंने उनसे भी बता दिया है···।'

खैर मालिनी रात भर वहीं रही। दूसरे दिन वह सवेरे ही गया और मिर्जा को बुला लाया। दोनों ने उसे समझाया कि इस समय उसका अपने घर जाना ही ठीक है। फिर जो भी बात होगी वे लोग उसके डैडी से करेंगे। दरअसल शादी होना, न होना तो एक बात थी—यह पूरी परिस्थिति बहुत सुखद न थी, इसे वह लोग समझ रहे थे।

वह स्वयं भावावेश में डूब रहा था। कोई इतने खतरे उठाकर जी-जान से उस पर निछावर हो सकता है, इसका उसे अन्दाजा न था। अनेक लड़कियों से, अपने अनेक प्रशंसकों से उसका मिलना-जुलना था, खतो-किताबत थी लेकिन ऐसा उसके पीछे पागल तो कोई न था। उसे अब मालिनी पर रह-रहकर प्यार उमड़ रहा था। कहां छिपा रखा था उसने अब तक यह सागर! बड़े घरों की लड़कियां प्रेम में किसी सीमा तक जा सकती हैं लेकिन शादी-ब्याह, यह तो दूसरा मामला होता है। इसमें वे अपने वर्ग के

साथ धोखा नहीं करती। लेकिन मन्नी—प्यारी मन्नी तूने तो सब झुठला दिया। इतना साहस, इतना विश्वास कहां से पा लिया तुमने।

—'मालिनी, मैं शादी-ब्याह के काबिल नहीं। फक्कडराम हूं मैं तो। तुम इतने ऐशो-आराम की आदी, मेरे साथ नहीं रह पाओगी। कहां से करूंगा मैं यह सब।'

—'सब हो जाएगा। जिन्दगी तो एडवेन्चर है मुकुल—और—मुझे यकीन है एक दिन तुम बहुत बड़े आदमी बनोगे···' और छिप गई थी वह उसकी बाहों में। उसके रेशमी सुगन्धित बाल सहलाते-सहलाते वह गंभीर सोच में पड़ गया था।

जैसी उम्मीद थी—उसके बाप ने उन लोगों को बहुत गालियां दी और वहां से जबरदस्ती मालिनी को ले जाने लगे लेकिन मालिनी ने तो ऐसा नाटक खड़ा कर दिया कि बस। आखिर में उसके डैडी उसे पटक, गुस्से से दांत पीसते हुए चले गये, इस धमकी के साथ कि दोनों को वे लोग जिन्दा नहीं छोड़ेंगे। शादी—एक अध्यापक से और वह भी कव्वाल—गवैये से—उन्हें सख्त ऐतराज था।

सचमुच वे लोग बहुत प्रभावशाली और समर्थ थे। उसी दिन शाम को कुछ गुण्डे उसके घर पर चढ़ आये। वह तो कहो कि वे लोग वहां नहीं थे इसलिए कुछ न हुआ। हां, सारा सामान और घर, वे लोग तहस-नहस कर गये। दूसरे दिन ही चुपचाप उन लोगों ने शहर छोड दिया। लगभग एक महीने बाद घूमते-घामते मस्ती से दोनों पति-पत्नी के रूप में वापिस आ गये कि तूफान अब शान्त हो चुका होगा। और तो सब ठीक था—सिर्फ उसकी नौकरी समाप्त हो गई थी।

उस पर चरित्रहीनता का आरोप था। लड़की भगाने का आरोप था। मालिनी के पिता ने अपने भरपूर प्रभाव का इस्तेमाल किया था। जब भूखों मरेंगे तो धरी रह जाएगी सारी कविता-फविता। उसकी नौकरी जो पिछले छह साल से स्थायी नहीं हो पायी थी अब इस मुद्दे पर समाप्त हो गई थी। शादी जैसा उसका नितान्त व्यक्तिगत मामला—उसने मानों चारों ओर तूफान बरपा दिया था।

उसने दरख्वास्त दी, रिप्रेजेन्ट किया इस अन्याय के खिलाफ। सभी

गाई। बम्बई में कुछ मित्रों ने उसकी गोट फिट कर दी थी और उसे फिल्मों मे गीत लिखने के लिए आमंत्रित किया गया।

—'बम्बई !!' मालिनी उछल पड़ी। उसका भाग्य—पहली फिल्म सुपर हिट हुई और गीत बेहद लोकप्रिय। पुरानी लीक से हटकर लिखे गीत मधुर स्वरों में बद्ध बहुत पसन्द किये गये। और फिल्मी जीवन तो इन्हीं धमाकों में बसता है। धमाकों के साथ ऊपर और धमाकों के साथ ही नीचे। कवि सम्मेलनों से अब फिल्मी दुनिया तक छा गया वह। इसके साथ ही उसका जीवन, रहन-सहन, खानपान, सब कुछ बदल गया। लक्ष्मी-सी बरसी मन्नी उसके जीवन में।

अब तो यह बहुत भारी भरकम नाम वाला व्यक्ति है। यहां उसके पास पैसा है जो खर्च नहीं होता, बहता है। प्यास—शराब बहती है पीते चले जाओ प्यास नहीं बुझती। सूरज के दोपहर तक चल चुकने के बाद उसका सवेरा होता है। रात का नशा उतरते-उतरते समय लगता है। फिर कुछ काम-काज—दौड़धूप—स्टूडियो—दोस्त—होटल—घर। शामें रंगीन-रात और रंगीन। उगते सूरज की किरणें जब अंधेरा भेदती है तब उसका रात का जागा सिर लुढ़क जाता है बेतरतीब। कोई गम नहीं, कोई चिन्ता नहीं। बस सुखी—सर्वत्र मंगल। सब निश्चिन्त हैं।

मालिनी के घरवाले भी प्रसन्न है। उनकी बेटी खुश है, आराम से है। उनका यही तो कहना था कि उनकी बेटी उस मुर्दरिस के साथ सुखी नहीं रह सकती। मुकुल—सबसे चर्चित नाम है लोगों की जुबान पर। आज वह गर्व की चीज है सरदार साहब के लिए। उनका पत्र आया कि उनके छोटे भाई का लड़का बम्बई आना चाहता है उन लोगों के पास। फिल्मों मे अगर उसे कोई बढ़िया चान्स मिल जाये तो बहुत अच्छा है। हीरो बनने की धुन सवार है उसके ऊपर।

मालिनी जल्दी ही एक प्रकाशन शुरू करने वाली है। उसने वहीं स्थायी रूप से रहने का पक्का इन्तजाम कर लिया है। अभी मुकुल को दिल्ली विश्वविद्यालय से एक पत्र मिला था। वे अपने यहां भाषा विभाग

में उसे वरिष्ठ पद पर सम्मानपूर्वक बुलाना चाहते थे। क्या वक्त-वक्त की बात है। जब वह वहीं रहना चाहता था तब एक तरह से धक्के मार कर उसे निकाला गया और आज—हर सम्मान, हर पद। वह गुमसुम हो गया था। मालिनी [illegible] गई उसकी गंभीरता से। उसने प्रेस खरीद लिया है। [illegible] मशीन आई है। कोई दो-तीन लाख तो इसी में लग गये। उसने भी सोचा, चलो अच्छा है। प्रकाशक तो बहुत शोषण करते हैं लेखकों का। जेनुइन लेखक के लिए इस व्यवस्था में लिखना और छपना—दोनों ही बहुत संघर्ष की वस्तु हैं। अच्छा है, उसका प्रकाशन होगा तो वह कमिटेड लेखकों को शोषणों से बचायेगा और उनकी मदद करेगा। मिर्जा को भी लिख दी उसने यह बात कि कमिटेड लेखकों की मदद के लिए वह अपना खुद का प्रेस और प्रकाशन शुरू करने जा रहा है ताकि जनवादी साहित्य लोगों के बीच आये। मन्नी से उसने जब यह कहा तो वह खिल्ल से हंस दी।

—'नहीं होगा किसी लेखक का अब शोषण लेकिन अब ज्यादा सोचो मत, जल्दी तैयार हो जाओ। आहूजा की फिल्म का प्रीमियर है आज, भूल गये क्या ?'

उसे याद आया। खुद सूचना मंत्री आने वाले हैं प्रीमियर के अवसर पर। उसका होना जरूरी है वहां। वही तो गिने-चुने बुद्धिजीवी वर्ग के लोगों में से है फिल्म इंडस्ट्री में। खुद मंत्री जी काफी साहित्यिक रुचि के हैं, इसलिए उसका जाना बहुत जरूरी है।

पिछली बार मिर्जा बंबई आया था अपनी यूनियन के किसी मुकदमे के सिलसिले में। उसका मोटापा देखकर बेसाख्ता हंस पड़ा था।

—'तुम तो मेरे भाई, बिजली की बात किया करते थे—और जैनरेटर हो गये हो पूरे।'

—'यार मिर्जा, सचमुच दम घुटता है यहां। लगता है जैसे सब कुछ ढोता चला जा रहा हूं···।'

—'बहुत बड़े आदमी हो गये हो भाई तुम तो ?'

—'मजाक मत करो। मैंने भी बहुत बेदर्दाफी सही है। कुत्ते की तरह दुरदुराया गया हूं। मैंने कभी नहीं चाहा था कि कायरों की तरह से लड़ाई

विशनू को। वह जायेगा वहां। उसे मालूम है संगठन कैसे होता है, हड़तालें कैसे करवाई जाती हैं। वह बात करेगा उनसे, उनकी दिक्कतें पूछेगा।

लेकिन गाड़ी तो मालिनी ले गई है। आ जाने दो उसे। अभी क्या जल्दी है। उसने वहीं लॉन में कुर्सी खींच ली और दोनों टांगें फैलाकर पसर गया। स्कॉच अब चढ़ रही थी और उसका सिर पीछे को लुढ़क गया था।

□□



नमिता सिंह

जन्म 4 अक्तूबर 1944। लखनऊ विश्वविद्यालय से स्वर्ण पदक के साथ 1965 एम. एस-सी। 1979 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से पी-एच. डी.। आरम्भ में कविताएं लिखीं। 1971 से कहानी लेखन। अनेक कहानी-संग्रहों मे कहानिया शामिल। अब तक दो कहानी-संग्रह 'खुले आकाश के नीचे' व 'राजा का चौक' प्रकाशित। कहानियों के अलावा वैचारिक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित।

सम्प्रति : टीकाराम कन्या महाविद्यालय, अलीगढ़ मे रसायन-शास्त्र विभाग मे प्राध्यापिका।